श्रीविशाखा

[विशेषांक]

श्री व्यास वाणी

(सिद्धान्त-खण्ड)

१५.८.४६

किशोर कला कुंज (किशोर बन)

वृन्दावन (उ० प्र०)

श्री व्यास पंचमी १६७८] [न्यौछावर : छः रुपया

श्री युगलकिशोरो जयति

श्रीविशाखा-विशेषांक

श्रीहरिराम 'व्यास' कृत

श्री व्यास वाणी

(सिद्धान्त-खण्ड)

सम्पादक :

आचार्य श्रीगोविन्दकिशोर गोस्वामी 'व्यासवंशी'

सेवाधिकारी—किशोरवन

वृन्दावन (उ० प्र०)

प्रकाशक :

किशोर-कला कुंज

किशोरवन, वृन्दावन (उ० प्र०)

'व्यास-वाणी' की महिमा—

जय जय बिसद व्यास की बानी ।
मूलाधार इष्ट रसमय, उत्कर्ष भक्ति रस सानी ।।
लोक बेद भेदन तें न्यारी, प्यारी मधुर कहानी ।
स्वादित सुचि रुचि उपजै,पावत मृदु मनसा न अघानी ।।
सक्ति अमोघ विमुख-भंजन की, प्रगट प्रभाव बखानी ।
मत्त मधुप रसिकन के मन की, रस रंजित रजधानीं ।।
कलि के कलुष विदारन कारन, तीछन तरल कृपानी ।
कपट-दंभ क्रूरी दूरी कर, बसन दास पन छानी ।।
रस शृंगार सरस जमुना सम, वर धारा घहरानी ।
बिधि-निषेधतरुवर तरु तोरत,हरि जसजलधिसमानी ।।
सुंदर बदन जुगल छबि भूषन, चीर चातुरी ठानी ।
पहिरै प्रेम कंचुकी सोहत, मुख मंदिर महारानी ।।
स्रवन सीप चातक विरही कों,ज्यों स्वातिन कौ पानी ।
सुख संतोष बढ़ावै, दूजै मुक्ति फलद अनुमानी ।।
हरि-लीला सागर तें रस भर बरषै सुझर सुहानी ।
सींचत सुहृद हृदय के दारुन, घनमाला सम जानी ।।
भक्ति अनन्य सलिल उपजाई, मृदुल सघन सरसानी ।
पायैं ताहि छुधित जन मन के, जियैं जीव सुखमानी ।।
जनु संतन के सुजस चंद्र की, सोभा स्वच्छ दिखानी ।
जातें जाइ प्रकृति जामिन कौ, तम तामस दुखदानी ।।
जुगल बिहार विटप सों लिपटी,सुवरन बेलि निवानी ।
लगे रँगीले सुमन जासु में, फल रसमय, निर्वानी ।।
दधि माधुर्य, माठ बृंदावन, भरौ अमोघ अमानी ।
सहज सतोगुन बँधौ जासु में, गोपी सुमति सयानी ।।
सखी रूप नवनीत उपासक, अमृत निकस्यौ आनी ।
'नीलसखी' प्रनमामि नित्य,सो अद्‌भुत कथन मथानी ।।

श्री किशोरवन, वृन्दावन
के
सेवाधिकारी एवं प्रबन्धक

आचार्य गोस्वामी श्री गोविन्दकिशोर जी "व्यासवंशी

अपनी बात

卐

श्रीकिशोर वन की सेवा करते हुए दस वर्ष व्यतीत हुए हैं। ये वर्ष जितनी सुगमता और आनन्द से व्यतीत हुए थे, मेरे जीवन की यह स्वर्णिम दशाब्दी थी, और यह सेवा भी संत कृपासे ही प्राप्त हुई।

जब श्रीव्यासजी महाराज (श्रीहरिराम जी व्यास) की वाणी (व्यास वाणी) का नियमित रूप से पाठ करने का अवसर दैनिक प्रातःकालीन सत्संग के उपरान्त जब आता था तो पहले एक साखी फिर.......

काहू के बल भजन को, काहू के आचार।
व्यास भरोसे कुंवरि के, सोवत पाँव पसार॥

इस साखी का सम्पुट देकर प्रवचन के अनुसार ही श्रीव्यास-वाणी के पद का पाठ करना होता है। इसलिए श्रीव्यास वाणी के अध्ययन का सौभाग्य मुझे मिला, बिना पढ़े और समझे श्रीव्यास वाणी का मूल्य उसी प्रकार से था ज्यों पारसमणि रहने पर भी कंगाल होते हैं। और यही हाल हमारे परिवार का था।

घर में जितनी भी व्यासवाणी जो मेरे दादाजी महाराज श्रीराधाकिशोर जी ने प्रकाशित करायी थीं। वे बहुत ही कम न्यौछावर से या ऐसे ही बाँट दी गयीं।

अब जब अर्थ समझ में आया तो एक भी व्यासवाणी घर में नहीं थी केवल हस्तलिखित प्रति के।

वाणी का पाठ नित्य होता है इसलिये भावुक भक्तों का हृदय भी व्यासवाणी के पाठ को मचलने लगा और वे मुझसे व्यासवाणी माँगने लगे। भला हो हमारे वंशज श्रीवासुदेव जी गोस्वामी

का जिन्होंने बहुत सी शङ्काओं के समाधान सहित श्रीहरिराम जी व्यास के जीवन की खोजपूर्ण जानकारी ऐतिहासिक प्रमाण सहित एवं श्रीव्यास जी द्वारा रचित पूर्ण व्यासवाणी दोनों खण्ड (सिद्धान्त एवं शृङ्गार) का प्रकाशन श्रीप्रभुदयाल जी मीतल के प्रेस द्वारा कराया। जो अब समाप्त प्रायः है दुगनी न्यौछावर देकर भक्तों ने प्राप्त कीं।

द्रव्य के अभाव के कारण बहुत दिनों तक व्यासवाणी प्रेस में अटकी रही लेकिन परम पूज्य श्रीबाबा विशाखाशरण जी महाराज की कृपा से जिन्होंने श्रीव्यास जी महाराज की शिष्य परम्परा में दीक्षा ग्रहण करके इस कुल का सदा सम्मान चाहा और व्यासजी महाराज की समाधि के जीर्णोद्धार के लिये मुझे १०००) रु० दिये, इतने में तो श्रीव्यास जी की समाधि का जीर्णोद्धार हो नहीं सकता था कम से कम १५०००)रु० की आवश्यकता थी जब तक और रुपया इकट्ठा हो मैंने श्रीबाबा जी महाराज से प्रार्थना की अगर आप आज्ञा दें तो मैं श्रीव्यासवाणी का सिद्धान्त खण्ड तो प्रकाशित करा दूं, और आगे शृङ्गार खण्ड के अधिकारी तो बन सकें, जब सिद्धान्त समझ में आ जायगा तो श्रीव्यास जी के भक्ति रस की धारा का ज्ञान पाठक को ही जायगा। फिर शृङ्गार के भँवर में फँसने का डर नहीं रहेगा। इतना सुनते ही बाबाजी महाराज ने मुझे सहर्ष आज्ञा दे दी तुम जैसा ठीक समझो वैसा करो पर श्रीव्यास जी महाराज की समाधि का जीर्णोद्धार अवश्य होना चाहिये ये मेरी हार्दिक वासना है।

आप लोगों के सम्मुख अनन्य निस्पृही रसिक संत बाबा श्रीविशाखाशरण जी महाराज की कृपा से श्रीव्यासवाणी का सिद्धान्त खण्ड प्रेषित है।

श्रीव्यासवाणी के विषय में मुझ अज्ञानी बालक को विशेष कुछ न कहकर ऐसी साखी जिन्होंने मुझे बहुत ही प्रभावित किया वह है—

व्यास न कबहूँ ऊपजै, विषयन कौ अनुराग।
साधु चरन रज पान बिनु मिटै न उर कौ दाग॥
व्यास न कथनी काम की, करनी है एक सार।
भक्ति बिना पंडित वृथा, ज्यों खर चन्दन भार॥
व्यास जाति तजि भक्ति करि, कहत भागवत टेरि।
जातिहि भक्ति ही नो बने, ज्यों केरा ढिग बेर॥

:: तीन ::

व्यास न व्यापक देखिये, निर्गुन परै न जान।
तब भक्तन हित औतरै, राधावल्लभ आन।।

ये साखी ऐसी सूक्ति हैं जो निर्देश करतीं हैं भक्ति पंथ के पथिक को। और जो व्यासवाणी का दैनिक पाठ करते हैं उन्हें तो वृन्दावन सहित प्रिया-प्रीतम श्रीयुगलकिशोर की नित्यलीला जो आठों पहर श्रीवृन्दावन धाम में चलती रहती है—का प्रत्यक्ष अनुभव होने लगता है।

इन्हीं लीलाओं को अष्टयाम लीला कहते हैं जिनके लिए श्रीहरिवंश महाप्रभु ने भी लिखा है।

चन्द्र मिटै दिनकर मिटै, मिटै त्रिगुण विस्तार।
दृढ़व्रत श्रीहरिवंश कौ, मिटै न नित्य-विहार।।

और ये नित्यविहार ही किशोरवन की अपनी वस्तु है, जहाँ आज भी लता निकुञ्जों में कभी रासलीला के माध्यम से कभी श्रीमद्-भागवत के बाङ्मय स्वरूप में या प्रवचन के द्वारा सारगर्भित निकुञ्ज-लीलाओं के वर्णन द्वारा आपको देखने सुनने को मिलता रहता है। ये क्रम पिछले १० वर्ष से निरन्तर चल रहा है। यहाँ आने वाले भक्त श्रोता समाज इसके प्रत्यक्षदर्शी साक्षी हैं।

मैं किशोरवन के दैनिक प्रातःकालीन सत्सङ्ग के वक्ताओं का चिर आभारी हूं जो अपना अमूल्य समय देकर यहाँ के श्रोता समाज को कृतार्थ करते रहते हैं। मैं उन भक्तों को भी साधुवाद ज्ञापन करता हूँ जिन्होंनें किशोरवन में अतिथि गृह का निर्माण कराके यहाँ आने वाले प्रेमी भक्तों को आवास की सुविधा प्रदान की है। जिनकी सूची आगे दी गयी है।

अब मैं उन भावुक भक्तों को अपनी श्रद्धा अर्पण करता हूँ जिन्होंनें हमारे स्थायी जमा खाते में दान देकर यहाँ की सेवा को चिरस्थायी बनाये रखने में सहयोग प्रदान किया है, इनकी सूची भी आगे प्रकाशित कर दी गयी है, और आंगे की सूची अगले अंक में प्रकाशित की जायेगी।

अभी केवल श्रीव्यास जी महाराज की समाधि का कार्य बाकी रहा है। जिसमें अनुमानतः १५०००) रु० की लागत है। और यहाँ

की सेवा के लिये स्थायी जमा खाते में मात्र ३००) रु० देकर आप एक दिन की सेवा के अधिकारी सर्वदा के लिए बन सकते हैं, उत्सवों की सेवा के लिये२०००) रु० एवं १०००) रु० हैं। आप भी सेवा का लाभ उठाने का सौभाग्य प्राप्त करें।

अखण्ड सेवा के स्वर्णिम अवसर का लाभ भक्तगण अवश्य प्राप्त करें।

श्रीव्यास स्वामिनी चरणरज किंकर
गोविन्दकिशोर गोस्वामी
सेवाधिकारी–किशोरवन, वृन्दावन

*

नित्य रासस्थली किशोरवन में रासलीला-दर्शन
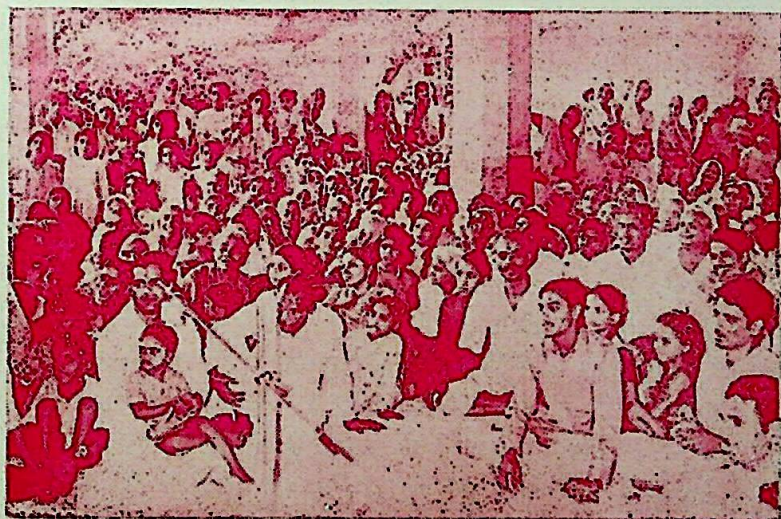
किशोरवन की रसमयी लीला में मग्न दर्शक

भूमिका

व्यासजी अपने समय के परम भक्त, सिद्ध महात्मा और सर्वस्व त्यागी महानुभाव थे। 'मुई नारि, घर सम्पति नासी। मूंड़ मुड़ाइ भये संन्यासी'—की लोकोक्ति के विरुद्ध वे अपने कुटुम्ब, परिवार, पुत्र-कलत्र, राजकीय प्रतिष्ठा और विपुल धन-वैभव का परित्याग कर एक निर्धन भिक्षुक की तरह वृन्दावन में आकर रहने लगे थे। फिर ओरछा-नरेश महाराज मधुकर शाह के स्वयं आग्रह करने पर भी ओरछा वापिस नहीं गये। सांसारिक प्रलोभनों से सर्वथा मुक्त होकर विरक्त भाव से जीवन व्यतीत करना कोई साधारण बात नहीं है। इस प्रकार का आचरण व्यासजी जैसे विरले ही सन्त-महात्माओं से संभव है। इससे व्यासजी का महत्व स्वयंसिद्ध है; किन्तु त्यागपूर्ण जोवन और भक्ति-भावना से भी अधिक उनके महत्व का कारण उनकी 'अमर वाणी' है। भक्त-कवि 'नीलसखी' ने व्यास-वाणी की वन्दना करते हुए इनके यथार्थ स्वरूप का कथन किया है। उन्होंने इसे लोक-वेद के भेदों से पृथक् और विधि-निषेध का नाश करने वाली बताया है। उन्होंने इस 'वाणी' को विमुख-भंजन के लिए अमोघ शक्ति कहा है, और अनन्य रसिकों के लिए सुख-संतोषप्रद बतलाया है।

'व्यास-वाणी' में जहाँ ब्रज के भक्त कवियों की भाँति राधा-कृष्ण की केलि-क्रीड़ाओं का रसपूर्ण वर्णन हुआ है, वहाँ सन्त-कवियों की तरह अनुभव जन्य लोकोपदेश भी दिया गया है। भक्तों की साधना प्राय: अन्तर्मुखी होती है, इसलिए भक्ति-काव्य की रचना भी भक्तोंने विशेष रूप से स्वांत:सुख के लिए की है; किन्तु सन्तों की वाणी में लोकोपकार की भावना अधिक रहती है। व्यासजी की रचनाओं में सन्त-काव्य और भक्ति-काव्य दोनों के गुण विद्यमान हैं और वे दोनों के समन्वय के सुदृढ़ आधार भी हैं। इस प्रकार व्यासजी का महत्व अन्य भक्त कवियों से अधिक हो जाता है।

दीक्षा-गुरु सम्बन्धी समस्त उपलब्ध सामग्री की आलोचनात्मक विवेचना करने से ज्ञात होता है कि व्यासजी के पिता सुमोखन शुक्ल ने चैतन्य महाप्रभु के गुरुभाई माधवदास नामक संन्यासी से माध्व सम्प्रदाय की दीक्षा प्राप्त की थी और व्यासजी ने अपने बाल्यकाल में अपने पिता से उसी सम्प्रदाय की दीक्षा ली थी। इस प्रकार स्वयं व्यासजी माधवदास के शिष्य न होते हुए भी उनकी शिष्य-परम्परा में आते हैं। इस ग्रन्थ में व्यासजी कृत एक संस्कृत रचना 'नवरत्न' का उल्लेख किया गया है, जिसे इस ग्रन्थ के लेखक ने इसकी रचना के समय तक स्वयं नहीं देखा था, किन्तु मुझे इसे देखने का अब अवसर मिला है। यदि यह ग्रन्थ व्यासजी कृत है, तो इसमें उन्होंने स्पष्ट रूप से अपने को माध्व सम्प्रदाय की गुरु-परम्परा के अन्तर्गत माना है। बाल्यकाल में माध्व सम्प्रदाय की दीक्षा लेने पर भी बाद में हित हरिवंश द्वारा प्रचलित सखी भाव की माधुर्य भक्ति के प्रति व्यासजी का विशेष आकर्षण हो गया और उन्होंने राधावल्लभीय उपासना-पद्धति स्वीकार कर ली। यही कारण है कि व्यास-वाणी में माध्व सम्प्रदायी द्वैतवादी दार्शनिक तत्त्वों के साथ-साथ राधावल्लभीय उपासना के तत्त्व विशेष रूप से उपलब्ध होते हैं।

आजकल इस विषय पर कुछ संकीर्ण साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से विचार किया जाता है, किन्तु व्यासजी के समय में भक्ति मार्ग का अनुसरण करने वाले भक्तों की मनोवृत्ति अत्यन्त उदार थी। वे साम्प्रदायिक भेद-भाव से रहित होकर समस्त वैष्णव भक्तों में समान रूप से श्रद्धा रखते थे।

व्यासजी ने अपनी वाणी में अपने समय के प्रायः सभी सन्तों और भक्तों का नामोल्लेख करते हुए उनके प्रति अत्यन्त आदर सूचक शब्दों का प्रयोग किया है, किन्तु हित हरिवंशजी के लिए तो अनेक पदों में उन्होंने गुरु के समान श्रद्धा प्रकट की है। इसीलिए प्रस्तुत ग्रन्थ में भी हितजी को व्यासजी का 'सद्‌गुरु' स्वीकार किया गया है। जहाँ तक व्यासजी के दीक्षा-गुरु का सम्बन्ध है, प्रस्तुत ग्रन्थ में पुष्ट प्रमाणों से यह सिद्ध किया गया है कि व्यासजी के दीक्षा-गुरु उनके पिता सुमोखन शुक्ल थे। इसके लिए ग्रन्थ में व्यास-वाणी के मंगलाचरण और अन्य पदों से उद्धरण दिये गये हैं। जो लोग हित हरिवंश जी को व्यासजी का दीक्षा-गुरु मानते हैं, वे भी व्यास-वाणी से ही

हितजी के साथ 'गुरु' शब्द का प्रयोग हुआ बतलाते हैं, किन्तु लेखक ने प्रामाणिक हस्त लिखित प्रतियों से फोटो-चित्र लेकर यह सिद्ध किया है कि उक्त पदों में 'गुरु' शब्द है ही नहीं। इस मत के लिए लेखक को किसी पक्ष का आग्रही समझना ठीक नहीं है। उन्होंने निष्पक्ष भाव से इस विषय का स्वस्थ विवेचन किया है।

दीक्षा-गुरु का विवाद इसलिए व्यर्थ है कि इससे हितजी और व्यास जी के पारस्परिक सम्बन्धों में कोई न्यूनाधिकता नहीं आती है। व्यासजी ने अनेक पदों में हितजी के प्रति गुरु जैसी श्रद्धा प्रकट की है; अतः यदि हितजी व्यासजी के दीक्षा-गुरु सिद्ध नहीं होते हैं, तो इससे हितजी के महत्व की न्यूनता और व्यासजी के महत्व की वृद्धि नहीं होती है।

व्यास-वाणी—

प्रस्तुत ग्रन्थ में संकलित व्यासजी की समस्त उपलब्ध रचनायें 'व्यास-वाणी' के अन्तर्गत ६ परिच्छेदों में विभाजित हैं। इन परिच्छेदों के क्रम और नाम निम्न हैं—

१. सिद्धान्त, २. शृङ्गार-रस-विहार, ३. समय के पद,
४. व्रज-लीला, ५. रास-पंचाध्यायी और ६. साखी।

विषयानुसार विभाजन करने से सिद्धान्त के पद और साखी के दोहे प्रायः एक ही विषय से सम्बधित हैं; अतः इनको साथ-साथ रखना अधिक समीचीन होता। व्यास-वाणी की अब तक जितनी भी प्रतियाँ उपलब्ध हुई हैं, इनमें साखी के दोहे सिद्धान्त के पदों के साथ ही साथ मिलते हैं। इस प्रकार के दोहों का पृथक् संकलन 'व्यासजी की चौरासी' के नाम से भी उपलब्ध होता है।

'साखी' और 'सिद्धान्त' दोनों में गुरु-महिमा, साधु-स्तुति और भक्त प्रशंसा के साथ ही ढोंगी गुरु, कपटी साधु और झूठे भक्तों की कड़ी निन्दा की गई है। व्यासजी ने जहाँ भक्तों के प्रति अपार श्रद्धा व्यक्त की है, वहाँ वैष्णव धर्म के विरोधी शाक्त आदि दुराचारी साधकों की तीव्र भर्त्सना भी की है। इस विषय में उक्त 'वाणी' कबीर की रचनाओं से मिलती हुई ज्ञात होती है। व्यासजी के साखी में कुछ दोहे ऐसे भी हैं, जो साधारण परिवर्तन के साथ कबीर-वचनावली में भी प्राप्त होते हैं। साखी की रचना कबीर आदि सन्त कवियों के काव्य की विशेषता है। भक्त कवियों में इस प्रकार की रचना के लिए व्यासजी कदाचित् अपवाद हैं। हरि भक्ति से विमुख और दुराचारी जनों की अत्यंत कटु शब्दों में तीव्र निन्दा कबीर के पश्चात् यदि किसी भक्त कवि ने की है, तो वह केवल व्यासजी ने ही की है।

ओरछा से वृन्दावन जाने पर व्यासजी हरि-भक्तों की सेवा और रसेश्वरी राधिकाजी के प्रेमानन्द में मग्न होकर भक्तिपूर्ण श्रृङ्गार के पदों की रचना किया करते थे। उस समय उन्हें अपनी पूर्व मनोवृत्ति के विरुद्ध किसी की निन्दा-स्तुति से कोई प्रयोजन न था। व्यासजी नें स्वयं कहा है—

रसिक अनन्य हमारी जाति।×
............'व्यास' न देत असीस-सराप ॥६३॥

इस प्रकार की रचनाएँ व्यास-वाणी के द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ और पंचम परिच्छेदों में संकलित हैं। ये रचनायें श्रृङ्गार और शान्त रसों की हैं। ये विषय व्यासजी को अत्यन्त प्रिय थे, अतः इनके सम्बन्ध की रचनायें भी अत्यन्त सरस, भावपूर्ण और हृदयग्राही हुई हैं। श्रृङ्गार रस की रचनाओं में उक्त रस से सम्बन्धित समस्त सामग्री का समावेश है। नख-शिख और ऋतुओं का आकर्षक वर्णन; वेनी-गुहन, आँख-मिचौनी, भोजन-विलास, बत-रस, गान-रस और सेज्या-विहार की केलि-क्रीड़ाएँ, अभिसार, धीरादि, खंडिता, मान, दूती, रास आदि की रसपूर्ण लीलायें; तथा उत्तान श्रृङ्गार से सम्बन्धित सुरति विहार, सुरतांत और विपरीत रति तक का विस्तृत कथन इन रचनाओं में उपलब्ध होता है।

व्यासजी की रचनाएँ वृन्दावन के अन्य भक्त कवियों की तरह संयोग श्रृङ्गारात्मक हैं। उनमें वियोग जन्य वेदना का सर्वथा अभाव है। यदि 'खंडिता' आदि लीलाओं के कारण प्रियतमा के 'मान' करने से संयोग में क्षणिक व्याघात भी होता है, तो विरह नायक को होता है, नायिका को नहीं। सखियों की प्रार्थना पर नायिका श्रीराधिकाजी नायक श्रीकृष्ण के साथ विहार कर उनकी विरह-विकलता को दूर कर देती हैं। इनमें श्री कृष्ण का महत्व कम और राधिकाजी का महत्व अधिक दिखलाया गया है। कृष्ण तो राधा के अनुचर हैं, जो उनकी कृपा-कटाक्ष के सदैव अभिलाषी रहते हैं। राधाजी कृपा पूर्वक कृष्ण के साथ नित्य विहार कर उनको कृतकृत्य करती रहती हैं। राधा-कृष्ण की अंतरंग लीलाओं में व्यासजी दासी के रूप में सदैव विद्यमान रहते हैं। वे कभी चिराग दिखलाते हैं,● तो कभी पीकदानी लेकर उपस्थित होते हैं।☘

व्यास-वाणी का क्रम और व्यासजी का रचना-काल—

व्यास-वाणी के विश्लेषण से इसके क्रम और व्यासजी के रचना-

● समय के पद, सं० ६८०।

☘ समय के पद, सं०

काल की एक रूप-रेखा भी निश्चित की जा सकती है। ऐसा ज्ञात होता है कि व्यासजी ने कबीर आदि संत कवियों की वाणी से प्रभावित होकर आरम्भ में साखी के दोहों की रचना की। इसके पश्चात् उनसे मिलते हुए सिद्धांत के पद रचे। उन दिनों शाक्त आदि वैष्णव विरोधी साधकों का बड़ा जोर था। उन्होंने साधना के नाम पर वीभत्स दुराचरण भी अपना रखे थे, जिनके कारण वे सदाचारी धर्मप्राण व्यक्तियों की घृणा और निन्दा के पात्र हो गये थे। व्यासजी ने अपनी साखी और सिद्धांत विषयक आरम्भिक रचनाओं में ऐसे दुराचारी लोगों को अपने वाक-वाण का लक्ष्य बनाया है। जब व्यासजी में भक्ति-भाव की प्रबलता हुई, तब वे भक्तिपूर्ण पदों की रचना करने लगे। उस समय उनका मन कृष्ण-भक्ति के प्रमुख केन्द्र वृन्दावन की ओर आकर्षित होने लगा। उनकी वाणी में ऐसे कितने ही पद मिलते हैं, जिनमें वृन्दावन जाने की उनकी प्रबल उत्कंठा व्यक्त हुई है।❀ ये पद उनके स्थायी रूप से वृन्दावन-वास से पूर्व की कृति ज्ञात होते हैं। इस प्रकार की रचना का समय सं० १६०० के आस-पास समझा जा सकता है।

अन्त में व्यासजी के हृदय में वृन्दावन-वास की लालसा इतनी बढ़ गई, कि उनका ओरछा में रहना असम्भव हो गया। वे सर्वस्व परित्याग कर सं० १६१२ के लगभग स्थायी रूप से ओरछा छोड़कर वृन्दावन में रहने लगे। इस ग्रन्थ के लेखक ने अनुमान किया है कि सं० १५९१ के लगभग वे एक बार पहले भी वृन्दावन जा चुके थे। वृन्दावन में स्थायी रूप से रहने पर उन्होंने व्रज-रस और राधा-कृष्ण की केलि-क्रीड़ा सम्बन्धी शृङ्गार-रस के पदों की रचना की। इस प्रकार की रचनाएँ उनके अन्त समय तक होती रहीं, अतः इनका रचना-काल सं० १६०० से १६६९ तक समझा जा सकता है।

व्यासजी को सन्तों और भक्तों की सेवा और उनके सत्संग में अत्यन्त आनन्द का अनुभव होता था। ऐसा ज्ञात होता है कि अपने अन्तिम काल में उनको उस आनन्द से वञ्चित होना पड़ा। कारण यह था कि उनके अनेक जीवन-साथी और इष्ट मित्र उनके सामने ही इस संसार से चल बसे थे, जिनके वियोग में वे बड़े दुखी रहा करते थे। उनके ऐसे कई पद★ उपलब्ध हैं, जिनमें उनकी उस समय की मानसिक वेदना व्यक्त हुई है।

❀ सिद्धांत के पद, सं० २५४ से २६७ तक।

★ साधु विरह के पद, सं० २३ से २७ तक।

छूआ-छूत और महाप्रसाद—

हरि-भक्ति में ठाकुरजी के महाप्रसाद का बड़ा महत्व है। व्यासजी जहाँ हरि-भक्तों में जाति-कुजाति और छूआ-छूत का विचार नहीं करते थे, वहाँ प्रत्येक हरि-भक्त से महाप्रसाद लेने में भी उनको कोई संकोच नहीं होता था। कहते हैं, एक बार उन्होंने वृन्दावन के किसी भंगी से प्रसाद ले लिया था। यद्यपि यह किंवदन्ती बहुत प्रसिद्ध है, तथापि इसका प्रामाणिक पूर्ण विवरण उपलब्ध नहीं है। व्यास-वाणी में इस विषय से सम्बन्धित कई वचन मिलते हैं, जिनके आधार पर यह समझा जा सकता है कि इस प्रकार की कोई घटना हुई अवश्य थी। इस सम्बन्ध में व्यासजी कृत 'साखी' के निम्न दोहे भी दृष्टव्य हैं—

स्वान प्रसादै छुइ गयौ, कौवा गयौ बिटार।
दोऊ पावन 'व्यास' कें, कह भागौत बिचारि ।।६५।।

'व्यास' रसिक जन ते बड़े, ब्रज तजि अनत न जाँय।
वृन्दावन के स्वपच लौं, जूठनि मागैं खाँय ।।२४।।

'व्यास' मिठाई विप्र की, तामैं लागै आग।
वृन्दावन के स्वपच की, जूठनि खैयै माँग ।।२५।।

हरि-भक्ति और महाप्रसाद में छूआ-छूत का परित्याग कर व्यासजी ने प्रचलित सामाजिक नियमों के विरुद्ध जो क्रान्तिकारी मार्ग ग्रहण किया था, उसके कारण रूढ़ि-पंथियों द्वारा उनको अप-मान और तिरस्कार भी सहन करना पड़ा; किन्तु वे अपने मार्ग से तनिक भी विचलित नहीं हुए। जब लोगों ने उनके सामने ब्राह्मणत्व और धर्माधर्म की दुहाई दी, तब व्यासजी ने निर्भीकता से कहा—

'व्यास' हि ब्राह्मन जिन गनौ, हरि-भक्तन कौ दास।
राधाबल्लभ कारनैं, सह्यौ जगत - उपहास ।।२६।।

जासों लोग अधर्म कहत हैं, सोई धर्म है मेरौ।
लोग दहिने मारग लाग्यौ, हौंब चलत हौं डेरौ ।।
जिनकी ये सब छोति करत हैं, तिनही कौ हौं चेरौ ।।२३०।।

उच्चादर्श की बात करना बड़ा सरल है, किन्तु उसे व्यवहार में लाना विरले ही महापुरुषों से सम्भव है। ध्रुवदासजी ने व्यासजी के सम्बन्ध में ठीक ही कहा है—

कहनी करनी करि गयौ, एक व्यास इहि काल।
लोक-वेद तजिकै भजे, श्री राधावल्लभ लाल॥
प्रेम मगन नहिं गन्यौ कछु, बरनाबरन-विचार।
सबनि मध्य पायौ प्रगट, लै प्रसाद रस-सार॥

प्रस्तुत ग्रन्थ—

अन्त में इस ग्रन्थ की रचना और इसके सम्पादन के सम्बन्ध में भी दो शब्द कहने हैं। मेरे द्वारा सम्पादित 'ब्रज-साहित्य माला' में नायिकाभेद और षट्ऋतु विषयक रीति कालीन ग्रन्थों के अतिरिक्त कई भक्ति कालीन ग्रन्थ भी प्रकाशित हुए हैं; किन्तु वे अष्टछाप, विशेष कर सूरदास से सम्बन्धित हैं। ब्रजभाषा भक्ति साहित्य में सूरदासादि अष्टछापी कवियों के पश्चात् वृन्दावन के भक्त कवियों का ही सर्वोपरि महत्व है; किन्तु खेद है, उनसे सम्बन्धित सर्वाङ्गपूर्ण ग्रन्थ अभी तक प्रकाशित नहीं हुए। मेरी बहुत दिनों से इच्छा थी कि हित हरिवंश, हरिदास स्वामी और श्रीहरिराम व्यास के जीवन-वृत्तान्त और काव्य संकलन सम्बन्धी ग्रंथ प्रस्तुत किये जावें।

अग्रवाल भवन
मथुरा

प्रभुदयाल मीतल

श्रीव्यास,वाणीकार और उनका उपास्य-तत्त्व

卐

श्रीव्यासवाणी के प्रणेता परमपूज्य रसिक समाज में लब्ध-प्रतिष्ठ श्रीहरीराम जी व्यास हैं। उनके स्वरचित पदों का संग्रह ही व्यासवाणी के नाम से सुविख्यात हैं। इनकी अनन्य निष्ठा-प्रसादनिष्ठा संतनिष्ठा लोक प्रसिद्ध है। इनकी अनन्य निष्ठा को स्पष्ट करते हुए श्रीनाभादास जी ने अपने भक्तमाल ग्रन्थ में लिखा है—

उतकर्ष तिलक अरुदाम कौ, भक्त इष्ट अति व्यास के ॥
काहू कै आराध्य मच्छ, कच्छ, नरहरि सूकर।
वामन परसाधरन, सेतुबंधन जु सैलकर ॥
एकन कै यह रीति नेम नवधा सौं लायें॥
सकल समोखन सुवन अच्युत गोत्री जु लडायें॥
नौगुन तोरि नूपुर गुह्यौ, महत सभामधि रास के।
उत्कर्ष तिलक अरु दाम को भक्त इष्ट अति व्यास के ॥

इस छप्पय से श्रीव्यास जी महाराज की उपास्य-निधि श्रीकृष्ण हैं। यह स्पष्ट हो जाता है और यह भी ज्ञात हो जाता है कि श्रीव्यास जी तिलक, तुलसी, कण्ठी को बहुत महत्व देते हैं।

श्रीहरीराम जी व्यास ओरछा के निवासी थे तथा तत्कालीन ओरछा-धीश मधुकर शाह देव इनकें प्रिय शिष्य थे। इनका जन्म मार्गशीर्ष कृष्णा ५ संवत् १५६७[1] में हुआ। बाल्यकाल से ही विद्याध्ययन में पूरी लगन लगा दी। फलतः आप एक बहुत बड़े दिग्विजयी ख्यातिप्राप्त विद्वान हुए

सुभ सत पन्द्रह जान, सरसठ ता ऊपर अधिक।
ता संवत में आन, प्रगट भये श्रीव्यास जी ॥
मार्गशीर्ष वदी पञ्चमी, वार लगन ग्रह योग।
स्वाभाविक अनुकूल हैं, कीनों विधि संजोग ॥

उस समय आपने अपनी विद्या के प्रभाव से चारों दिशाओं में शास्त्रार्थ में विजय श्री प्राप्त की थी। जब आपके हृदय में युगलकिशोर का अनुराग जागा तभी आप घर-द्वार छोड़कर श्रीवृन्दावन आ गये।

भगवत्प्राप्ति का प्रमुख स्थान वृन्दावन है। वृन्दावन में भजन सहायक वस्तुएँ प्रचुरता से प्राप्त होती हैं। व्यासजी का पूर्ण विश्वास है कि मुझे वृन्दावन में हरि का दर्शन अवश्य होगा—

हरि मिलिहैं वृन्दावन में।
साधु वचन मैं साँचे जाने फूल भई मेरे मन में।
विहिरत संग देखि अलिगण युत निविड़ निकुञ्ज भवन में ।।
नैन सिराय पाइ गहिवी तब, धीरज रहि हैं कवन में।
कबहुँक रास विलास प्रगटि हैं, सुन्दर सुभग पुलिन में ।।
विविध विहार अहार सचौ है व्यास दास लोचन में ।।

वृन्दावन आने पर आपका मन युगलकिशोर की लीलाओं में डूबने लगा। उनके हृदय में जो भी लीला स्फुरित होती उसी लीला का आप पद बनाकर गाया करते थे। बहुत थोड़े से ही समय में वृन्दावन की गहन गरिमा इनके सरस सुवोध हृदय में भली भाँति स्थिर हो गई। अपने परम आराध्य युगलकिशोर से संभाषण होने लगा। अनेकों बार श्यामा-श्याम ने इन से कुछ अभीष्ट माँगने का आग्रह किया। जब भी प्रभु कुछ माँगने की आज्ञा देते ये मौन भाव से उनकी रूप माधुरी में लीन हो जाते थे। एक दिन प्रातः व्यासजी ने अपनी बात कह ही दी।

गौर श्याम मुख देखत मेरे नैन ठगे।
मानहुँ चन्द्र किरनि मधु पीवत, राति चकोर जगे ।।
× × ×
नाशा भरनि हसन दामिनि छवि दशन फूल सुभगे।
नख सिख अङ्ग निहारत, आरज पथतैं 'व्यास' डगे ।।
"व्यासवाणी शृङ्गाररस ७४"

ओरछा नरेश को इनका वृन्दावन आना अच्छा नहीं लगा। क्योंकि इनके वृन्दावन चले आने से उनकी राज्यसभा गुरु-विहीन, दिशा-विहीन सी हो गई थी। इधर वहाँ की प्रजा राजा से बारबार पूछती थी कि महाराज ! गुरुजी कहाँ गये, और कब आवेंगे ? राजा इसका उत्तर कुछ भी न दे पाते थे। एक बार राजा ने कुछ लोगों को साथ लेकर वृन्दावन आने का विचार किया। उस दिन रात्रि में राजा को स्वप्न में श्रीगुरु जी के दर्शन भी हुए। राजा की गुरु-दर्शन लालसा और भी बढ़ गई थी।

दूसरे दिन प्रातः काल ही प्रस्थान करके राजा वृन्दावन आ गये। श्रीवन में आकर राजा ने देखा कि पूज्य गुरुजी की चर्या में बहुत परिवर्तन आ चुका है फिर भी उन्होंने व्यासजी से ओरछा चलने की प्रार्थना की। सुनकर श्रीव्यास जी ने उत्तर दिया—

मोसो पतित न अनत समाइ।
याही तैं में वृन्दावन की सरन गह्यौ है आइ। आदि।

"व्यासवाणी सिद्धान्त पद, १७

राजा के अनेकों बार किये हुए प्रयास व्यर्थ हुए आपने वृन्दावन छोड़ना अच्छा नहीं समझा। इनका तन, मन, बुद्धि युगल केलिरस में डूब चुका था।

एक दिन प्रभु का शृङ्गार करते समय प्रभु के मस्तक पर पाग बाँध रहे थे मस्तक चिकना था पाग बार बार खिसक जाती थी आप झल्लाकर बोले 'लेहु जू बँधाय नहिं आप बाँध लीजिये" कहकर आप कुञ्ज में आकर भावना में लीन हो गये, भावना में पुनः पुनः यही बात आने लगी कि शृङ्गार अधूरा किया है अतः वे बहुत देर वहाँ न बैठ सके, लौटकर आये तो देखा कि पाग तो प्रभु ने बहुत अच्छे ढङ्ग से बाँध ली है।

दर्शन करके भजन-मग्न होकर व्यासजी बोले—जब आप इतनी अच्छी बाँध लेते हो तो मेरी बँधी पाग आपको क्यों अच्छी लगेगी।

आपको सदा संत-मण्डली में बैठकर प्रसाद पाना बहुत रुचिकर था। प्रसाद में निष्ठा जितनी इनमें देखने को मिलती है उतनी सर्वत्र प्रतीत प्रसाद को इन्होंने जीवन मूरि स्वीकार की है। देखिये प्रसाद नहीं होती। निष्ठा का एक पद—३४

हमारी जीवन मूरि प्रसाद।[1]
अतुलित महिमा कहत भागवत, मेटत सब प्रतिवाद।
जो षट् मास व्रतनि कीने फल, सो एक सीथ के स्वाद॥
दर्शन पाप नशात खात सुख, परसत मिटत विषाद।

---

१ व्यास मिठाई विप्र की, तामें लागै आग।
वृन्दावन के स्वपच की, जूठन खैये माँग॥ साखी १३३
स्वान प्रसादहि छी गयो, कौआ गयो विटारि। साखी ८६
दोऊ पावन व्यास के कहे भागौत विचारि॥

देत लेत जो करै निरादर, सो नर अधम गवाद।
'व्यास' प्रीति परतीति रीति सों जूठनि ते गुन नाद ।।

एक दिन संत मण्डली में बैठकर प्रसाद पा रहे थे। पंगत लगी हुई थी इनकी परम सौभाग्यवती पत्नी ही वहाँ भोजन परोस रही थी, उन्होंने व्यासजी को दूध में मलाई विशेष रूप से डाल दी। व्यासजी के संतसेवी हृदय में यह बात बहुत खटकी और उन्होंने अपनी साध्वी पत्नी को भी संत सेवा के कार्य से वंचित कर दिया, उनकी भी संतों में वैसी ही निष्ठा थी। अतः उन्होंने संत सेवा से वंचित होने के दुःख से तीन दिन तक अन्न जल ग्रहण नहीं किया। अन्न-जल विहीनता से अत्यन्त दुर्बल हो गईं। बहुत लोगों ने श्रीव्यास जी से आग्रहपूर्वक कहा तब उन्होंने पत्नी से कहा कि अपने आभूषणों (जेवर) को सन्त सेवा में लगा दो उन्होंने जो आज्ञा कहकर सन्त-सेवा स्वीकार की।

श्रीनाभादास कृत भक्तमाल के प्रसिद्ध टीकाकार श्रीप्रियादास जी ने इस घटना को इस प्रकार लिखा है—

संत सुख दैन बैठे संग ही प्रसाद लैन,
परोसति तिया सब भाँतिन प्रवीन है।
दूध बरताई लै मलाई छिटकाई निज,
खीझि उठे, जानि पति पोषित नवीन है।
सेवा सों छुटाय दई, अति-अन मनी भई,
अंग गई भूख बीते दिन तीन तन छीन है।
सब समझावें तब दण्ड को मनावें,
आभरन बेंचि साधु जेंवेंयो अधीन है।।

इस प्रकार वृन्दावनाधीश्वरी श्रीराधारानी जी की अङ्गजा सहचरी विशाखाजी का जो हृदय है वही श्रीव्यास जी का हृदय है।

जैसे जड़-चेतन में श्रीविशाखा जी श्यामा-श्याम माधुरी का दर्शन करती हैं। ठीक वैसे ही श्रीव्यास अलि भी उसी रसास्वादन में निमग्न हैं। यह सब इस व्यास वाङ्मय (व्यासवाणी) से स्पष्ट है।

भक्तों में श्रीव्यास जी का वही भाव है जो भाव युगलकिशोर में है। हरि दास का लक्षण वर्णन करते हुए कहते हैं—

व्यास बड़े हरि के जना, जिनके उर कछु नाँहि ।
त्रिभुवनपति जिनके सुवस, और कहौ किंहि माँहि ।।

आप केवल शुद्ध भक्ति मात्र का ही पक्ष करते हैं। इन्होंने भक्ति से पूर्ण भक्त रैदास पर करोड़ कुलीन ब्राह्मणों को न्यौछावर कर दिया है—

व्यास बड़ाई छाँड़ि के, हरि चरनन चित जोरि ।
एक भक्त रैदास पर, वारौं बाँमन कोरि ।।[1]

जाति-कुल-गोत्रादि के अभिमान से परे भक्ति का शुद्ध स्वरूप है—

व्यास जाति तज भक्ति कर, कहत भागवत टेरि ।
जातिहि भक्तिहि ना बनैं, ज्यों केरा ढिग बेरि ।।

हरि केवल भक्ति का नाता ही स्वीकार करते हैं—
हरिर्हि साध्यते भक्त्या प्रमाणं तत्र गोपिकाः । (भा० माहात्म्य)

इस प्रकार भक्त वरेण्य श्रीव्यास जी का समस्त जीवन नित्य नवीन घटनाओं से परिपूर्ण है। इनके ज.वन-चरित्र को अनेकों सन्तों ने अपनी वाणी से गाकर अपनी वाणी को कृतार्थ माना है—इन ग्रन्थों का अध्ययन करना चाहिये—श्रीनामादास जी कृत 'भक्तमाल, श्रीनागर समुच्चय, श्रीरसिकमाल, व्रजमाधुरी सार आदि। श्रीवृन्दावन में श्रीव्यास जी महाराज की दिव्य भजन-स्थली 'किशोरवन' के नाम से विख्यात है। यहीं वैठकर आपने अपने सर्वस्व युगल श्रीराधिका-कृष्णचन्द्र को लाड़ से आराधना की है। यहीं आपने अपने प्राणेश्वर से मधुर सन्लाप किया है।

आज भी इस वन की झुकी लताओं का दर्शन करके प्रभु मिलन की उत्कण्ठा बलवती हो उठती है। कितना भी कलिमल ग्रसित जीव हो किशोरवन का दर्शन करके तथा व्यास सर्वस्व श्यामा-श्याम की छवि को निहार के तन-मन से निर्मल हो जाता है। ऐसा यहाँ अनेकों बार चमत्कार देखा गया है।

श्रीव्यास वंशोद्भव आचार्य श्रीगोविन्दकिशोर जी महाराज की किशोरवन सेवा भावना स्तुत्य है। यहाँ अवाध रूप से दैनिक प्रातःकाल

१- जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिये ज्ञान ।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान ।। कबीरदास

२- तहाँ जाति कुल नँहि विचार, कौन सु उत्तम कौन गँवार ।
सार भजन हरिवंश को ।। श्रीदामोदरदास जी 'सेवकजी'

वृन्दावन के मूर्द्धन्य विद्वानों, रसिक सन्तों द्वारा सत्सङ्ग होता हैं। तथा रासलीला का आनन्द भी भावुकजनों को विभोर बनाये रहता हैं। यह श्रीगोविन्दकिशोर जी महाराज के प्रयासों और व्यास कृपा का फल है।

किशोरवन में अभी और भी परमार्थिक योजनायें हैं, मेरा विश्वास है कि श्रीगोस्वामी जी निकट भविष्य में अपने अथक प्रयासों से, साधु-स्वभाव से उन्हें सफल बनाने सक्षम होंगे। विगत दश वर्षों में जो स्थाई कार्य हुए हैं, वे सभी वृन्दावनस्थ सन्त-महानुभावों के द्वारा प्रशंसित है।

प्रस्तुत विशाखा के माध्यम से वन्दनीय चरण विशाखा सखी के अवतार अनन्त श्रीआचार्य श्री १०००८ श्रीव्यास जी महाराज की वाणी को घर-घर में पहुँचाने का प्रयास है। श्रीव्यास जी की वाणी क्या है—पूर्ण अनुराग भरे हृदय भेदी वाण हैं। वाण लगने की पीड़ा को भले ही कोई चातुरी से, धैर्य से सह ले किन्तु इन महानुभाव की वाणी का जो प्रभाव हृदय पर, बुद्धि पर हठात् होता हैं, वह आनन्द इस मन्द लेखनी के सामर्थ्य बात नहीं। वह अनुभवगम्य—'कहिवे कूँ नहिं प्रेम के बैना। मन जाने कै दोऊ नैना।

आजकल श्रीकिशोरवन में व्यासवाणी पर ही प्रवचन चल रहा है। वैसे उनकी वाणी की व्याख्या तो वे ही कभी कृपापूर्वक करें तो व्याख्या हो सकती है। या वे कृपा करें तव भी सम्भव है। परन्तु इतना तो अवश्य है कि जितनी बार मैंने व्यासवाणी के पदों का अनुशीलन किया उतना नया-नया आनन्दानुभव हुआ।

कलि के कुचाली चित्त पर व्यासवाणी का बहुत प्रभाव होता। दुष्ट विचारों का सर्वथा अभाव हो जाता है, और नये-नये सद्विचारों के साथ नयनों में श्यामा-श्याम झिलमिला उठते है। सन्तों की वाणियों के शब्दों में खोजाना चाहिये। गहरा गोता लगाने वाला गोता खोर ही सिन्धु की तह में से रत्न निकाल पाता है

श्रीव्यास की वाणी के सम्बन्ध में अधिक क्या कहें उनकी वाणी जितना स्वयं प्रकाश करती है उतना कोई भी नहीं कह सकता। आप सब भगवत-चरिणामृत रसास्वादन कुशल महानुभावों के कमलों में यह विशाखा की भूमिका को समर्पित करते हुए अपार हर्ष होता हैं। यह आपको सदा आनन्दित करेगी।

आप सभी प्रेमी पाठकवृन्दों की ऐसी कृपा रहे कि सदा उन्हीं के नाम रूप, गुण, लीला में मन लगा रहे। परम उदार श्रीव्यास जी महाराज के चरणों में कोटि-कोटि प्रणाम। अपने प्रेम सिंधु में से एक विन्दु इस दीन को अवश्य प्रदान करेंगे। उन जैसे वही हैं—

वर किशोर दोऊ लाड़िले, नवल प्रिया नव पीय ॥
प्रगट देखियत जगमगे, रसिक व्यास को हीय ॥
कहनी करनी करि गयौ, एक व्यास ईहि काल।
लोक वेद तजि कैं भजे, राधावल्लभ लाल ॥

दि० : २६ दिसम्बर १६७७

रसिक पद रेणु :
श्यामसुन्दर शास्त्री
श्रीमद्भागवत धाम, सेवाकुञ्ज वृन्दावन

सनाढ्यकुल-कौस्तुभ, माध्वमत मार्तण्ड श्रीयुगलकिशोरजी की
प्रिय सहचरी श्रीविशाखाजी के अवतार

रसिकशेखर प्रातःस्मरणीय आचार्य

श्रीहरिराम 'व्यासजी' महाराज

प्रादुर्भाव : मार्गशीर्ष कृष्ण पञ्चमी सम्वत् १५६७

नित्यलीला-प्रवेश : १६६९

॥ श्री युगलकिशोरो विजयते ॥

श्रीव्यास-वाणी

[सिद्धान्त खण्ड]

★

मंगलाचरण [१] राग सारंग

बन्दे श्री सुकल·पद·पंकजन ।
सत्त-चित्त-आनंद की निधि, गई हिय की जरन ॥
नित्य वृन्दाविपिन संतत जुगल मम आभरन ।
'व्यास' मधुपहिं दियौ सर्वसु, प्रेम-सौरभ सरन ॥

गुरु-महिमा [२] राग बिलावल

गुरु की सेवा हरि करि जानी ।
गये उज्जैन, रैन-दिन दुख सहि, तजि मथुरा रजधानी ॥
छाँड़ी प्रभुता पांइ लगत हैं, दास कहत सुखदानी ।
गद्-गद् सुर पुलकित बेपथ, सोहत गो-रज लपटानी ॥
ईहिं बिधि रहत बहुत दिन बीते, गुरु-घरनी अनखानी ।
पीसत, पोवत, करत रसोई, हौं जु भई नकवानी ॥
यह सुनि सकुचि गये बन मोहन; सिर धरि भौरी आनी ।
भूखें प्यासें मेहु सह्यौ निसि, भोर भर्‌यौ हरि पानी ॥
दियौ जिवाइ मृतक सुत तब हीं, गुरु महिमा पहिचानी ।
हरिके गुन-गन कहौं कहाँ लगि,'व्यास' बिमुख अभिमानी ॥

[३] राग केदारौ

गुरु गोबिन्द एक समान ।
वेद पुरान कहत भागवत, ते जु बचन परमान ॥
एकै शिष्य लीक देत हैं, गुरु सों दूर भयें परसावत ।
छियें छोति मानत हैं छुतिहा, सींचौ लै पुनि धावत ॥

जैसी रीति सेष सोफिन की, ऐसी रीति चलावत।
संन्यासी पै मंत्र सुनत हैं, ते कब भक्त कहावत।।
गुरु गाड़ें चेला लै वारें, दोऊ पंथ तुरंत भये।
उत संन्यास न इतहिं भक्ति-फल, खल नर बोर्चाहि बीच गये।।
दीच्छा बरनु पलटु है ऐसौ, दिया दिया है जैसौ।
'व्यास' बीज बोवत हैं जैसौ, फल लागत है तैसौ।।

[४] राग बिलावल

जैसे गुरु तैसे गोपाल।
हरि तो तब ही मिलि हैं, जब ही श्री गुरु होहिं कृपाल।।
गुरु रूठें गोपाल रूठि हैं, बृथा जातु है काल।
एक पिता बिनु गनिका-सुत कौ, कौन करै प्रतिपाल।।
ज्यों रज बिनु रजपूत कपूत जिय देखत रन कौ चाल।
ऐसैं ही गुरु के बिमुख शिष्य कौ, जम करिहैं बेहाल।।
संत संग गुरू की सेवा करि, सुपर्चाहि करत निहाल।
'व्यास' दास खिजयें गुरु जुग-जुग मिटत नहीं उर साल।।

साधु-स्तुति

[५] राग सारंग

नमो नमो नारद मुनिराज।
विषयनि प्रेम-भक्ति उपदेसी, छल-बल किये सबनि के काज।।
जासों चित दै हित कीनौ, ते सब सुधरे साधु समाज।
'व्यास' कृष्ण-लीला रँग राचे, मिट गई लोक-बेद की लाज।।

[६] राग सारंग

नमो नमो जय सुकदेव-बानी।
जा सुमिरत हरि मन में आवत, गावत सुधरे सब अभिमानी।
तासों प्रीति करत भ्रम छूटत, करम दुरासा त्रास डरानी।।
मद मत्सर माया सुत जाया, काया बिसरी सब दुखदानी।।
जिन सर्वोपरि वृन्दावन की, सहज माधुरी केलि बखानी।
निर्मल भजन अनन्य कियौ जिन, निरसे जोगादिक तुच्छि ध्यानी।।
जिनकी बिषै भागवत संतत, भक्ति-भाव भक्तन पहिचानी।
जय जय 'व्यास' उत्तरानंदन, आनँदकंद सरद घन पानी।।

[७] राग सारंग

सुक नारद से भक्त न कोऊ, जिहिं भागवत सुनायौ ।
बिनु भागवत भक्ति न उपजै, साधन साधि बतायौ ।।
जिनके बचन सुनत, संदेह परीच्छत देह भुलायौ ।
संसारी ताकों करुना करि सुखदानी दिखरायौ ।।
जिनकी कृपा कृपाल होत हरि, सुत ह्वै आपु बँधायौ ।
तिन कारन गिरवर धरि, विष पावक पीवत सुख पायौ ।।
कहा-कहा न कियौ करुनानिधि, निज दासनि कौ भायौ ।
कोटि अजामिल हू तें पापी, 'व्यास' हिं नाम लिवायौ ।।

[८] राग धनाश्री

पद्मावती-पति-पद सरनम् ।
कुंजकेलि-कविराज मुकुटमनि, रसिक अनन्यनि आभरनम् ।।
श्री हित हरिबंस हंस मुख सुखमय, बचन रचन दुख जल तरनम् ।
श्री जयदेव 'व्यास' कुल बंदित, ब्रज जुवती नट नृत करनम् ।।

[९] राग सारंग

श्री जयदेव से रसिक न कोई, जिन लीला-रस गायौ ।
जाकी जुगति अखंडित मंडित, सबही के मन भायौ ।।
बिबिध बिलास कला कवि मंडन, जीवन के भागनि आयौ ।
'पतति पतत्रे' मुख निसरत ही, राधा-माधव कौ दरसन पायौ ।।
बृन्दावन कौ रसमय वैभव, जिनि पहिलैं सबनि सुनायौ ।
ता पाछैं औरन कछु पायौ, सो रस सबनि चखायौ ।।
पद्मावति-चरनन कौ चारन, जिहिं गोंबिद रिझायौ ।
'व्यास' न आस करी काहू की, कुंजनि स्याम बुलायौ ।।

[१०] राग गौरी

नमो-नमो जै श्री हरिवंस !
रसिक अनन्य बेनुकुल-मंडन, लीला-मानसरोवर-हंस ।।
नमो जयति बृन्दावन सहज माधुरी रास-विलास प्रसंस ।
आगम-निगम अगोचर, राधे-चरन सरोज 'व्यास'-अवतंस ।।

[११]   राग गौरी

मैदा-मिश्री-मुहरें मेरें, श्री बृन्दावन की धूरि ।
जहाँ राधा रानी, मोहन राजा, राज रह्यौ भरिपूरि ।।
कनक कलस, करुवा महमूदी[1] खासा ब्रज कमरनि की चूरि ।
'व्यास'हि हित हरिबंस[2] बताई, अपनी जीवनि-मूरि ।।

[१२]   राग सारंग

अनन्य नृपति श्री स्वामी हरिदास ।
श्री कुँजबिहारी सेये बिनु, जिन छिन न करी काहू की आस ।।
सेवा सावधान अति जान, सुघर गावत दिन रास ।
ऐसौ रसिक भयौं ना ह्वै है, भुवमंडल आकास ।।
देह विदेह भये जीवत हो, बिसरे विस्व-विलास ।
श्री बृन्दावन-रज तन-मन भजि, लोक-बेद की आस ।।
प्रीति-रीति कीनीं सब ही सों, किये न खास खवास ।
अपनौ ब्रत हठि ओर निवाह्यौ, जब लगि कंठ उसास ।।
सुरपति, भूपति, कंचन, कामिनी, जिनकें भायें घास ।
अब के साधु 'व्यास' हम हू से, जगत करत उपहास ।।

[१३]   राग नट

श्रीहरिबंस से रसिक हरिदास से अनन्यनि की,
को बपुरा अब करि सकै सारो ।
जिन बृन्दावन साँचौ करि जान्यौं, राधाबल्लभ, कुँजबिहारी ।।
रूप-सनातन हैं बैरागी, उपकारी सब के हितकारी ।
'व्यास' धन्य-धन्य ब्रजवासी, कृष्णदास गोबर्धन-धारी ।।

[१४]   राग जयतिश्री

श्री माधवदास सरन मैं आयौ ।
हौं अजान, ज्यों नारद ध्रुव सों कृपा करी, संदेह भगायौ ।।
जिनहिं चाहि गुरु सुकल तज्यौं बपु फिरकै दरसन पायौ ।
मो सिर हाथ धरौ करुना करि, प्रेम-भक्ति-फल पायौ ।।

पाठान्तर—[1] महमूदी, [2] हेत हरिवंश, श्री हरिवंश, हिति हरिवंस

हरिबंसी, हरिदासी सों मिलि, कुंजकेलि-रस गाय सुनायौ ।
गुरु,हरि, साधु, नाम, बन, जमुना, महाप्रसाद रसालय भायौ ।।
जातें सहज प्रिया-प्रीतम बस, कलजुग बृथा गँवायौ ।
मनसा, वाचा और कर्मना, 'व्यास'हिं स्याम बतायौ ।।

[१५] राग देवगंधार

जै-जै मेरे प्रान सनातन-रूप !
अगतिन की गति दोऊ भैय्या, जोम-जज्ञ के जूप ।।
बृन्दावन की सहज माधुरी, प्रेम-सुधा के कूप ।
करुनासिंधु, अनाथबंधु, जय भक्त-सभा के भूप ।।
भक्ति भागवत-मति आचारज-कुल के चतुर चमूप ।
भुवन चतुर्दस विदित बिमल जस, रसना के रस-तूप ।।
चरन-कमल कोमल रज-छाया, मेटत कलि-रवि धूप ।
'व्यास' उपासक सदा उपासी राधा-चरन अनूप ।।

[१६] राग सारंग

कलि में साँचौ भक्त कबीर ।
जब तें हरि चरननि रुचि उपजी, तब तें बुन्यौ न चीर ।।
दीनौं लेइ न कबहूँ जाँचै, ऐसौ मत कौ धीर ।
जोगी, जती, तपी, संन्यासी, तिनकी मिटी न पीर ।।
पाँच तत्व तें जनम न पायौ, काल ग्रस्यौ न सरीर ।
'व्यास' भक्ति कौ खेत जुलाहौ, हरि करुनामय नीर ।।

[१७] राग सारंग

साँची भक्ति नामदेव पाई ।
कृष्ण-कृपा करि दीनी जाकों, लोकन-बेद बड़ाई ।।
प्रीति जानि पय पियौ कृपानिधि, छानि छबीलैं छाई ।
चरन पकरि सठ के हठ बल, ज्यों हरि सों बात कहाई ।।
जाके हित हरि मंदिर फेरचौ, चित दै गाइ जिवाई ।
जिन रोटी घी चुपरि स्याम कों अपने हाथ खवाई ।।

जाकी जाति-पाँति-कुल बीठल, संतजना सब भाई।
ताकी महिमा 'व्यास' कह कहै, जाकें सुबस कन्हाई ॥

[१८] राग धनाश्री

प्रबोधानंद से कवि थोरे।
जिन राधाबल्लभ की लीला-रस में सब रस घोरे।
केवल प्रेम-बिलास आस करि, भव-बंधन दृढ़ तोरे ॥
सहज माधुरी बचननि, रसिक अनन्यनि के चित चोरे ॥
पावन रूप-नाम-गुन उर धरि, विषै-बिकार जु मोरे।
चारु चरन-नख-चंद-बिंब में, राखे नैन चकोरे ॥
जाया, माया, गृह, देही सों, रवि-सुत बन्धन छोरे।
लोक-वेद सारंग अंग के, सेत हेत के फोरे ॥
यह प्रिय'व्यास' आस करि, हित हरिबंसहिं प्रति कर जोरे।

[१९] राग धनाश्री

श्री राधाबल्लभ की नव कीरति, बरनत हू न निघात।
भरतखंड की सुकवि मंडली, बरनत हू न अघात ॥
बड़े रसिक जयदेव बखानी, लीला-अमृत चुचात।
बृन्दावन हरिबंस प्रसंसित, सुनि गोरी मुसिकात ॥
राग सहित हरिदास कही, रस-नदी बही न थहात।
रसिक अनन्यनि की जूठनि, 'व्यास' सखी रुचि-सुचि कै खात ॥

[२०] राग धनाश्री

साँची प्रीति श्री बिहारिनदासै।
कै करुवा, कै कुंज-कामरी, कै धरु श्री स्वामी हरिदासै ॥
प्रतिबाधक सहि सकत न जिनकें, जानत नहीं कहा कहै त्रासै।
महा माधुरी मत्त मुदित ह्वै गावत, रस जस जगत उदासै ॥
छिन ही छिन परतीत बढ़त, रस-रीतनि देखि बिबि बदन बिलासै।
ग-अंग नित्य बिहार करत मिलि, इहै आस निजु बन बसि, 'व्यासै' ॥

[२१] राग धनाश्री

इतनौ है सब कुटुम हमारौ ।
सैन, धना अरु नामा, पीपा और कबीर, रैदास, चमारौ ॥
रूप, सनातन कौ सेवक, गंगल भट्ट सुढारौ ।
सूरदास, परमानंद, मेहा, मीरा भक्ति बिचारौ ॥
बाह्मन राजपुत्र कुल उत्तम, तेऊ करत जाति कौ गारौ ।
आदि अंत भक्तन कौ सर्बसु, राधाबल्लभ प्यारौ ॥
आसू कौ हरिदास रसिक, हरिबंस न मोहिं बिसारौ ।
इहि पथ चलत स्याम-स्यामा के, 'व्यास'हिं बोरौ, भावहिं तारौ ॥

[२२] राग सारंग

मेरैं भक्त हैं देई-देऊ ।
भक्तनि जानौं, भक्तनि मानौं, निज जन मोहिं बतेऊ ॥
माता, पिता, भैय्या मेरे भक्त-दमाद, सजन, बहनेऊ ।
सुख-संपति परमेस्वर मेरैं, हरिजन जाति-जनेऊ ॥
भवसागर कौ बेरौ भक्तै, केवट कह हरि खेऊ ।
बूड़त बहुत उबारे भक्तनि, लिये उबार जरेऊ ॥
जिनकी महिमा कृष्ण कपिल कहि, हारे सर्वोपरि बेऊ ।
'व्यास' दास के प्रान-जीवन-धन, हरिजन बाल-बड़ेऊ ॥

साधु-विरक्त

[२३] राग सारंग

साँचे साधु जु रामानंद ।
जिन हरि जू सों हित करि जान्यौ, और जानि दुख दंद ॥
जाकौ सेवक कबीर धीर अति, सुमति सुरसुरानंद ।
तब रैदास उपासक हरि के, सूर-सु परमानंद ॥
इनतें प्रथम तिलोचन-नामा, दुखमोचन सुखकंद ।
खेम-सनातन भक्तिसिंधु, रस रूप, राघवानंद ॥
अलि हरिबंसहिं फब्यौ, राधिका-पद-पंकज मकरंद ।
कृष्णदास, हरिदास उपास्यौ, वृन्दावन को चंद ॥

जिनु बिनु जीवत मृतक भयें हम, सह्यौ विपति कौ फंद।
तिनु बिनु उर कौ सूल मिटै क्यों, जियें 'व्यास' अति मंद॥

[२४] देवगंधार

हुतौ सुख[1] रसिकनि कौ आधार।
बिनु हरिबंसहिं सरस रीति कौ, कापै चलिहै भार॥
को राधा दुलरावै-मावै, बचन सुनावै चार।
श्री वृन्दावन की सहज माधुरी, कहि है कौन उदार॥
पद-रचना अब कापै ह्वै है, निरस भयौ संसार।
बड़ौ अभागा अनन्य सभा कौ, उठिगौ ठाठ-सिंगार॥
जिन बिनु दिन-छिन सतजुग बीतत, सहज रूप आगार[2]।
'व्यास' एक कुल कुमुद-बंधु बिनु, उडगन जूठौ थार॥

[२५] राग धनाश्री

पै न छबि कोऊ कबन बखानैं।
जीव कुकात प्रीति कहिवे कौं, व्याकुल होत अयानैं॥
अति अगाध रस-सिंधु-माधुरी, वेई पै कहि जानैं।
ताकौ वार-पार नहिं पावत, विधि-सिव-सेष धरत श्रुति ध्यानैं॥
कोटि-कोटि जयदेव सरीखे, कहत सुनत न अघानैं।
'व्यास' आस मन की को पुजवै, श्री हरिवंस समानैं॥

[२६] राग सारंग

बिहारहिं[3] स्वामी बिनु को गावै।
बिनु हरिबंसहिं, राधाबल्लभ को रस रीति सुनावै॥
रूप-सनातन बिनु, को वृन्दाविपिन-माधुरी पावै।
कृष्णदास बिनु, गिरधर जू कौं को अब लाड़ लड़ावै॥
मोराबाई बिनु, को भक्तनि पिता जान उर लावै।
स्वारथ परमारथ जैमल बिनु, को सब बन्धु कहावै॥

पाठान्तर—१ सुख, रस। २ आगार, सिंगार। ३ बिहारहिं, बिहारिहि।

परमानंददास बिनु, को अब लीला गाइ सुनावै ।
सूरदास बिनु पद-रचना कों, कौन कबिहिं कहि आवै ॥
और सकल साधन बिनु, को कलिकाल कटावै ।
'व्यासदास' इन बिनु, को अब तन की तपन बुझावै ॥

[२७] राग सारंग

साधु-सिरोमनि रूप-सनातन ।
जिनकी भक्ति एक रस निबही, प्रीत कृष्न-राधा तन ॥
जाकौ काज सवाँरयौ चित दै, हित कीनौ छिन ता तन ।
जाकें बिषय-बासना देखी, मनसा करी न बातन ॥
श्री बृन्दावन की सहज माधुरी, रोम-रोम सुख गातन ।
सब तजि कुंज-केलि भज अहनिसि, अति अनुराग सदा तन ॥
तृन हू तें नीचे, तर हू तें सहकर, अमानी, मान सुहात न ।
असि-धारा ब्रत ओर निवाह्यौ, तन-मन कृष्ण-कथा तन ॥
करुनासिंधु कृष्ण चैतन्य की कृपा फली दुहुँ भ्रातन ।
तिन बिनु 'व्यास' अनाथ भयें, अब सेवत सूखे पातन ॥

जमुना-स्तुति [२८] राग कान्हरौ

जमुना जोरी जू की प्यारी ।
जाकी वैभव कही भागवत, सुक, जयदेव बिचारी ॥
मनिमय तटी, उभय पट-भूषन, पूषन पियहिं सिंगारी ।
सौरभ-सुधा सलिल, जनु, राधा-मोहन की रस-झारी ॥
सुरतरु राज बिराजत; तीर कुटीर समीर सँवारी ।
कुसुमित नमित बिबिध साखा सों, प्रान समान सुखारी ॥
महलन के मारग जल छलबल, बिहरत निपुन बिहारी ।
ऐंननि लै नैनन-सैनन में, व्याकुल बसत बिकारी ॥
हंस हंसनी सभा प्रसंसित, जय बृषभान-दुलारी ।
'व्यास'-स्वामिनी, स्याम-भामिनी, बृन्दावन-चंद उज्यारी ॥

[२९] राग सारंग

महाप्रसाद-स्तुति

हमारी जीवन-मूरि प्रसाद।
अतुलित महिमा कहत भागवत, मेटत सब प्रतिवाद ॥
जो षट मास ब्रतनि कीनैं फल, सो एक सीथ के स्वाद।
दरसन पाप नसात, खात सुख, परसत मिटत बिषाद ॥
देत-लेत जो करै अनादर, सो नर अधम गवाद।
श्री गुरु सुकल प्रताप 'व्यास' यह रस पायौ अनहाद[1] ॥

[३०] राग सारंग

हरि-प्रसाद क्यों लेत नारकी।
ब्याह-सराध अधम जहँ जूठनि खात फिरत संसार की ॥
जा मुख सलिता बहै निरंतर, विष-लोहू-कफ-लार की।
तिहिं मुख सुखद जाय क्यों जूठनि, ब्रज-जुबतिन के जार की ॥
ताहि न बृन्दावन-रज रुचि है, राधा-पद सु कुँवार की।
जाकी देहैं टेब परी है, कदरज ढोली खार की ॥
ज्यों असती आराधत जारहिं, तजि सेवा भरतार की।
ऐसैं 'व्यास' कहावत निगमन, विषय-नदी विष-धार की ॥

नाम-स्तुति

[३१] राग कान्हरौ

परम धन राधा नाम अधार।
जाहि स्याम मुरली में टेरत, सुमिरत बारंबार ॥
जंत्र, मंत्र अरु बेद-तंत्र में, सबै तार कौ तार।
श्री सुक प्रकट कियौ नहिं यातें, जानि सार कौ सार ॥
कोटिन रूप धरैं नँदनन्दन, तोऊ न पायौ पार।
'व्यासदास' अब प्रगट बखानत, डारि भार में भार ॥

पाठान्तर—१ श्री गुरु सुकल प्रताप 'व्यास' यह रस पायौ अनहादि (ग) 'श्री गुरु सकल प्रताप 'व्यास' यह रस पायौ अनहाद' (च); 'व्यास' प्रीति परतीत रीति सौं जूठन तै गुन नाद (ख, च)

[३२] राग कान्हरौ

लागी रट राधा, श्री राधा नाम।
ढूँढ़ि फिरी बृन्दावन सगरौ, नन्द-ढिठौना स्याम ॥
कै मोहन है खोर साँकरी, कै मोहन नन्दगाम।
श्री 'व्यासदास' की जीवन राधे, धनि बरसानौ गाम ॥

[३३] राग गौरी

हरि-हरि-हरि मेरैं आधार। हरि-हरि मेरैं सहज सिंगार ॥
हरि-हरि सकल सुखन कौ सार। हरि-हरि 'व्यास' कृपन कें भंडार ॥

[३४] राग भैरव

हरिबोलि, हरिबोलि, प्यारी रसना। हरिबोले बिनु नरकहिं बसना ॥
हरि बोलि, नाँचि न मेरे मना। हरि बोलि, होइ निरमल तना ॥
हरि बोलि, पर-निंदा नहीं करन। हरि बोलि राधा-चरन सरना ॥
हरि बोलि, बृन्दाविपिन गहना। हरिबोलि, हरिबोलि सबै सहना ॥
हरि नाम, हरि नाम सदा जपना। हरि बिन 'व्यास न कोऊ अपना ॥

[३५] राग सारंग

गोपाल कहियै, गोपाल कहियै। गोपाल कहियै, कछु और न कहिये ॥
गोपाल कहियै, दुख-सुख सहियै। गोपाल ज्यों राखैं, त्यों ही रहियै ॥
गोपाल गाइयै, परम पद लहियै। 'व्यास' बेगि बृन्दावन गहियै ॥

[३६] राग नट

नरहरि गोबिंदे गोपाला।
दीनानाथ, दयानिधि सुंदर, दामोदर नन्दलाला ॥
सरन-कलपतरु चरन कामधेनु, आरति हरन कृपाला।
महा पतित पावन, मनभावन, राधारमन रसाला ॥
अघ, बक, बकी, वत्स, धेनुक, कंस, केसि कुल काला।
साधु सभा हरि पुष्ट करहिं, दिन दुष्टन के घर घाला ॥
मानसरोबर रसिक अनन्य, हृदय कल कमल मराला।
घन तन स्याम, नाम राधा-धव, नागर नैन बिसाला ॥

इंद्र नीलमनि मोहन तन छवि, कंचन तन ब्रजबाला ।
'व्यास' स्वामिनी हरि उर राजत, मानहुँ चंपक-माला ।।

[३७] राग धनाश्री

जय श्री कृष्णा, जय श्री कृष्णा, जय श्री कृष्णा, जय जगदीसा ।
असुर-सँहारन, विपति-विदारन, ईसन हू के ईसा ।।
कृष्ण - मुरारी, कुंज - बिहारी, बाल - मुकुंदे, लाला ।
दीन - उधारी, संत - सुधारी, गिरधारी गोपाला ।।
जदुकुल - नायक, दीन - सहायक, सुख - दायक, जन-बंधू ।
सुखमा - सुंदर, महिमा - मंदिर, करुना - पूरन सिंधू ।।
गोधन - गोहन, बन - घन - सोहन, मन-मोहन, ब्रज-चंदा ।
नटवर नागर, परम उजागर, गुन-सागर, गोविंदा ।।
जदुकुल - नंदन, दनुज - निकंदन, करत सनंदन सेवा ।
जय गरुड़ासन, प्रेम प्रकासन, 'व्यासदास' कुल देवा ।।

वृन्दावन-स्तुति

[३८] राग सारंग

कहत हू बनै न ब्रज की रीति ।
यह सुख सुक-सनकादिक माँगत, माया-मोहहिं जीति ।।
सब गोपाल उपासिक, तन-मन वृन्दाबन सों प्रीति ।
एक गोबिंद चंद लगि छांड़ी, लोक-वेद की भीति ।।
सहज सनेह देह गति बिसरी, बाढ़ी सहज समीति ।
संपति सदा रहत, विपदा महिमोहन की परितीति ।।
अगनित प्रलय-पयोधि बढ़त हू, मिटो न घोष बसीति ।
'व्यास' बिहारिहिं बिहरत बन, अवतार गये सब बीति ।।

[३९] राग सारंग

सदा बृन्दावन सब की आदि ।
रसनिधि, सुखनिधि, जहाँ बिराजत नित्य, अनंत, अनादि ।।
गौर-स्याम कौ सरन, हरन दुख, कंद - मूल-मुंजादि ।
सुक, पिक, केकी, कोक, कुरंग, कपोत, मृगज, सनकादि ।।

कीट, पतंग, बिहंग, सिंह, तहाँ सोहत जनकादि।
तरु, तृन, गुल्म, कल्पतरु, कामधेनु, गो, बृष, धर्मादि ॥
मोहन की मनसा तें प्रगटित, अंस-कला कपिलादि।
गोपिन कों नित नेम-प्रेम, पद-पंकज जल-कमलादि ॥
राधा दृष्टि सृष्टि सुंदरि की, बरनत जयदेवादि।
मथुरा मंडल के जादव कुल, अति अखंड देवादि ॥
द्वादस बन में तिलु-तिलु धरनी, मुक्ति तीर्थ गंगादि।
कृष्ण जन्म अचला न चलै, जो होंहि प्रलय मन्वादि ॥
गिरि गहवर बीथी रति रन में, कालिंदी सलितादि।
सहज माधुरी मोद विनोद, सुधा-सागर ललितादि ॥
सबै संत सेवत निरबैरिन, लखि माया नासादि।
सेष-असेष पार नहिं पावत, गावत सुक- 'व्यासा'दि ॥

[४०] राग कामोद

धनि-धनि बृन्दावन की धरनि।
अधिक कोटि बैकुंठ लोक तें, सुक-नारदमुनि बरनि ॥
जहाँ स्याम को बाल केलि कुल धाम, काम-मन हरनि।
ब्रह्मा मोह्यौ ग्वाल मंडली, भेद रहित आचरनि ॥
राधा की छबि निरखत मोही, नारायन की घरनि।
और बार कीनो बनि बनिता, प्रेम पतिहिं अनुसरनि ॥
जहाँ महीरुह राज बिराजत, सदा फूल-फल फलनि।
तहाँ 'व्यास' बसि ताप बुझायौ, अंतरहित की जरनि ॥

[ ] राग सारंग

छबीली बृन्दावन की धरनि।
सदा हरित, सुख भरित, मोहनी मोहन परसत करनि ॥
धबल धेनु छबि नवल ग्वाल फबि, सोभित द्रुम की जरनि।
रंग भरो अँग-अँग बिराजत, पल्लव लव-लव धरनि ॥

चंद्रका चारु सिंगार, केकि-नट नाचत मिलि नागरनि।
गुन अगाध राधा-हरि गाइ-बजावत सुख-सागरनि॥
कुंज-कुंज कमनीय कुसुम, सयनीय केलि आचरनि।
कुच गहि चुंबन करि दुख मेटि, भेंटि भुज आँकौ भरनि॥
पाबक-पवन, चंद-तारा जहँ, आभासत नहिं तरनि।
'व्यास' स्वामिनी कौ बल-वैभव, कहि न सकत कवि डरनि॥

[४२]   राग सारंग

श्रीवृन्दावन की शोभा देखत, मेरे नैन सिरात।
कुंजनि-कुंज पुंज सुख बरषत, हरषत सबके गात॥
राधा-मोहन के निज मन्दिर, महा प्रलय नहिं जात।
ब्रह्मा तें उपज्यौ न अण्ड तें, कमल सिखण्ड नसात॥
फन पर रवि तर नहीं बिराट महँ, कमला पुर के तात।
माया-काल रहित, नित नूतन, सदा फूल-फल-पात॥
निर्गुन-सगुन ब्रह्म तें न्यारौ, बिहरत सदा सँघात।
'व्यास' विलास-रास अद्भुत गति, निगम अगोचर बात॥

[४३]   राग धनाश्री

माया-काल न रहत, बृन्दावन रसिकन की रजधानी।
सदा राज ब्रजराज लाड़िलौ, राधा संतत रानी॥
मथुरा मण्डल देस सुबस, गढ़ गोवर्धन सुखदानी।
रास भण्डार सुभोग रहत, अति पावन जमुना पानी॥
बंशीवट छत्र; पुलिन सिंघासन, मृदङ्ग अलि-पिक-बानी।
कटि-काछनी टिपारौ बाँधे, मोरन सुधंग ठानी॥
निर्भय राजपंथ, चिर बीथिन, महल निकुञ्ज रबानी।
प्रतीहार ब्रजवासी रोकत, सपनैं हु न जात अभिमानी॥
हरिबंसी-हरिदासी महलनि साधु . सनातन जानी।
बेगि खबर करि 'व्यास' गुगरिबी, पिछिली हू पहिचानी॥

[४४] राग केदारौ

श्री बृन्दावन की शोभा देखत, बिरले साधु सिरात ।
विटप-बेलि मिलि केलि करत, रस-रंग अंग लपटात ॥
भुज-साखनि परिरंभन, चुंबन देत परसि मुख पात ।
कुच फल सदय हृदय पर राजत, फूल दसन मुसका.. ॥
कोटर स्रवन सुनत मृदु कुंजनि, किसलय नैन चुचात ।
नित्य बिहारहिं खग सुर गाइनि, गावत सुरभि सुबात ॥
इहिं रस जिनके तन-मन राचे, तिनहिं न और सुहात ।
'व्यास' बिलास-सिंधु लोभिन के उर-सरबन न समात ॥

[४५] राग के ौ

सुखद सुहावनौ वृन्दावन लागत है अति नीकौ ।
त्रिबिध समीर बहै, रुचिदाइक भाँवते-भाँवती कौ ॥
मोर, चकोर, हंस-हंसनि युत, पीवत पान अधर-रस पी कौ ।
पलक न लगत अंग छबि निरखत, जानत जीवन जी कौ ॥
मुरली बजाइ, सुनाय स्रवन धुनि, संतन सों मंडल रचि लीकौ ।
तत्-तत्, थेई-थेइ बोलि परस्पर, तन में तनक न सीकौ ॥
नित्य बिहार-अहार करत हैं, ब्रजवासिन सुख पुण्य रती कौ ।
'व्यासदास'या मुख के ऊपर और ऐसौ,ज्यों दीपक द्यौसहिं फीकौ ॥

[४६] राग देवगंधार

श्रीबृन्दावन देखत नैन सिरात ।
इनि मेरे लोभी नैनन में, शोभा-सिंधु न मात ॥
संतत सरद-बसंत, बेलि-द्रुम झूलत, फूलत घात ।
नन्दनँदन-बृषभाननन्दिनी मानहुँ मिलि मुसकात ॥
ताल, तमाल, रसाल, साल, पल-पल चमकत फल-पात ।
मनहु गौरमुख बिधु कर रंजित, शोभित साँवल गात ॥
किंसुक नवल नवीन माधुरी, विगसित हित उरझात ।
मनहु अबीर-गुलाल भरे तन, दम्पति रति अकुलात ॥

बैठे अलि अरबिंद-बिब पर, मुख-मकरन्द चुचात।
मानहु स्याम कंचु कुच कर गहि,अधर-सुधा पीवत बलि जात ।।
नाचत मोर, कोकिला गावत, कीर - चकोर सुहात।
मनहु रास - रस नाचैं दोऊ, बिछुर न जानत प्रात ।।
त्रिभुवन के कवि कहि न सकत कछु, अद्‌भुत गति की बात।
'व्यास' बात नहिं मुख कहि आवै, ज्यों गूँगहिं गुर खात ।।

[४७] राग देवगंधार

श्रीवृन्दावन प्रगट सदा सुख-चैन।
कुँज-निकुँज पुंज छबि बरषत, आनन्द कहत बनै न ।।
कुसुमिति नमित बिटप नव साखा, सौरभ अति रस-ऐन।
मधुप, मराल, केकि, सुक, पिक धुनि,सुनि व्याकुल मन मैन ।।
स्यामा-स्याम फिरत बन-वीथिन, होत अचानक ठैन।
पुलकित गात सम्हारत भुज में, भेंटत बात कहै न ।।
अति उदार सुकुमारि नागरी, रोम-रोम सुख दैन।
हाव-भाव अँग-अंग बिलोकत, धन्य 'व्यास' के नैन ।।

[४८] राग सारंग

वृन्दावन की बलाइ लै हौ।
देखत जाहि राधिका - मोहन, सुख पावत रौ-रौ ।।
शीतल छाँह सुबास कुसुम-फल, जमुना - जल रस सौ।
बिटप-बेलि प्रति केलि प्रगट, बिट बधू प्रताप नदौ ।।
सुक, पिक, अलि, केकी, मराल,खग-मृग मन माँहि बँधौ।
ब्रजवासिन की पद-रज तन, मन सुखसागरहिं सचौ ।।
छबि-निधि 'व्यास'हिं फब गई भक्ति,क्यों छिन छाँड़ि सकौ ।।

[४९] राग सारंग

प्यारी श्रीवृन्दावन की रैन।
जाहि निरखि मोहन सुख पावत, हरषि बजावत बैन ।।

जहाँ-तहाँ राधा चरननि के अंक बिराजत ऐन।
राग - भोग संजोग जहाँ - तहाँ, दम्पति के रति - सैन ॥
रसिक अनन्यनि कौ मुख-मण्डन, दुख-खण्डन, सुख चैन।
मधु मकरन्द चन्द रस बरषत, गोधन कौ निजु फैन ॥
कुंजनि पुंजनि की छबि निरखत, रति भूली पति मैन।
'व्यासदास' के कुंवर-किशोरी, बाँधौ - दाहिनौ नैन ॥

[५०] राग सारंग

माला-मन्दिर तें पावन, बृन्दावन की रैन।
भक्ति - भागवत हू तें प्यारी, रसिकन मोहन बैन ॥
महाप्रसाद स्वाद तें मीठौ, गाइन कौ पय-फैन।
साधु-सङ्ग तें अधिक जानिवौ, ग्वाल मण्डली धैन ॥
वर मथुरा बैकुण्ठ लोक तें सुखद निकुञ्जनि ऐन।
सुक - नारद - सनकादिक हू तें, दुर्लभ मोहन-सैन ॥
सुनौ न देखौ, भयौ न ह्वै है, राधा सम रस चैन।
'व्यास' बल्लभ बपु बेदनि हू (तें), माँग्यौ मोहन मैन ॥

[५१] राग सारंग

प्यारे श्रीवृन्दावन के रूख।
जिन तर राधा - मोहन बिहरत, देखत भाजत भूख ॥
माया - काल न व्यापै जिन तर, सींचै प्रेम पयूख।
कोटि गाय-बांभन हत, साखा तोरत हरहिं बिदूख ॥
रसिकन पारजात सूझत है, बिमुखन ढाक-पिलूख।
जो भजियै तौ तजियै पान, मिठाई, मेवा, ऊख ॥
जिनके रस - बस ह्वै गोपिन तज सुख - सम्पति-ग्रह तूख।
मनि - कंचन मय कुंज बिराजत, रंध्रनि चन्द्र - मयूष ॥
जिहिं रस भोजन तज्यौ परीछित, उपजौ सुक अहूख।
'व्यास' पपीहा बन घन सेयौ, दुख सलिता-सर सूख ॥

[५२] राग सारंग

छबीली बृन्दावन की बेलि ।
आनँद-कन्द-मूल सुख मय, फल-फूल सुधा-मधु झेलि ।।
राधारवन भवन मनमोहन, निरखि बढ़ावत केलि ।
मलयज, मृगज, कपूर धूरि, कुंकुम, सौरभ रस झेलि ।।
तहाँ बिराजत हंस-हंसिनी, अंस बाहु पर मेलि ।
अलि-कुल नैन चषक रस पीवत, कोटि मुकति पग पेलि ।।
'व्यास' स्वामिनी पियहिं सुबस करि,बिरमति नाहिन खेलि ।।

[५३] राग सारंग

बिराजै श्रीबृन्दावन की बेलि ।
फूलनि द्रुम भरि ताहि भेंटि, दुख मेटि, अंस भुज मेलि ।।
अरुझि नाह की बाँहनि, कुँचित केस सुदेस नवेलि ।
कल फल पीन पयोधर पिय के, हिय सुख-सागर झेलि ।।
किसलय बदन विहँसि चुंबन करि,पुलकि-पुलकि करि केलि ।
आनँद नीर नयन मधु बरषत, हरषत कोटिक खेलि ।।
पट-भूषन नव कुसुम-पत्र छबि, रवि-पावस अवहेलि ।
'व्यास' राधिकारवन-भवन को, निरखत है बग पेलि ।।

[५४] राग सारंग

श्रीबृन्दावन के रूख, हमारे मात - पिता - सुत-बन्धु ।
गुरु गोविन्द साधु गति-मति सुख फल-फूलन कौ गन्ध ।।
इनहिं पीठि दै, अनत दीठि करै, सो अन्धनि में अन्ध ।
'व्यास' इन्हें छोड़ैरु छुड़ावै, ताको परै निकन्ध ।।

[५५] राग सारंग

मीठी वृन्दावन की सेवा ।
स्यामा-स्यामहिं नीकी लागत, ज्यों बालकहिं कलेवा ।।
बेलि हमारी कुल - देवी सब, बिटप-गुल्म सब देवा ।
और धरम अकरम से लागत, बिन माला ज्यों लगत जनेवा ।।

कुंजनि-कुंजनि कुसुम-पुंज रचि, सैन ऐन मधु-मेवा ।
मनि-कंचन भाजन भरि सौंधे, अंग धूप कौ खेवा[1] ॥
बिहरत सदा दुलहिनी-दूलह, अंग-अंग मधु रस पेवा ।
'व्यास' रास आकाश फिरत दोऊ, मानहु प्रेम-परेवा ॥

[५६] राग धनाश्री

देखौ श्रीवृन्दाविपिन प्रभाइ ।
सब तीरथ धामनि फिर आयौ, देखत उपजत भाइ ॥
श्रीजमुना तट लता भवन रज, छिन-छिन बाढ़त चाइ ।
मगन होत जब सुधि-बुधि बिसरत, कहूँ चतल नहिं पाइ ॥
यह रस चाखि और रस भूले, फूलत लखि मन अति घहराइ ।
अचरज कहा 'व्यास' सुख बरनत, थके रसिक ताहि गाइ ॥

[५७] राग धनाश्री

सदा बन कौ राजा भगवान ।
जाकौ अन्त अनन्त न जानत, करि मुख चतुर बखान ॥
जो परभाव भक्ति रजधानी, राधारानी-प्रान ।
कुँज महल श्री वृन्दावन धन गोपी रूप-निधान ॥
प्रेम प्रजा ब्रजवासी अनुचर, ग्वाल-ग्वालि सन्तान ।
माइ जशोदा, नन्द पिता, सुखदाता श्री वृषभान ॥
बिटप छत्र-छाया मृदु राजत, आसन सभा सुजान ।
मन्त्री मदन सहायक सन्तत, लाइक विषय प्रधान ॥
नटवा मोर और कल कोकिल, मधुप सुरन बंधान ।
भेरि भारही, झरना कलरव, मधुर मृदंग निसान ।
राग-भोग संजोग सदा गति, रास-विलास सु गान ॥
यह सुख 'व्यास' दास कों निसिदिन, दीनौ कृपानिधान ॥

पाठान्तर – १. खेबा, सेवा

[५८]　　　　　　　　राग कान्हरौ

९–मधुपुरी की स्तुति–

धनि-धनि मथुरा, धनि-धनि मथुरा, धनि मथुरा के बासी हो।
जीवत मुक्त सबै बिहरत हैं, केसौराय उपासी हो॥
माला-तिलक हृदै अति राजत, मुनि-मन ज्ञान प्रकासी हो।
थावर-जंगम सबै चत्रभुज, काम-क्रोध-कुलनासी हो॥
सुभग नदी बिश्रांत जमुन जल मज्जन काल बिनासी हो।
'व्यासदास' षट् पुरी दुरी सब, हरिपुर भयौ उदासी हो॥

[५६]　　　　　　　　राग कान्हरौ

सखी हो मथुरा-बृन्दावन बसियै।
तीन लोक तें न्यारी मथुरा, और न दूजी दिसियै।
केसौराइ, गोवर्धन, गोकुल, पल-पल माँहि परसियै।
जमुना जल बिसरांत मधुपुरी, कोटि करम जहँ नसियै॥
नन्दकुमार सदा वन बिहरत, कोटि रसाइन रसियै।
'व्यासदास' प्रभु जुगल किशोरी, कोटि कसौटी कसियै॥

[६०]　　　　　　　　राग सारंग व बिहागरौ

१०-श्रीकिशोर-किशोरी जू की स्तुति-

जय-जय राधिका-धव स्याम।
केलि - पुँज - निकुंज - नायक, कंज-मुख सुख-धाम॥
नैन - सैननि मैन मोहत, बैन बिहसनि बाम।
भृकुटि – भंग तरंग उपजत, अंग–अंग ललाम॥
पीत चीर, अधीर भूषन, किंकनी मनि दाम।
मुकट – कुण्डल गण्ड झलकत, अलक-छबि अभिराम॥
धन्य वृन्दाविपिन - बासी, सत्य पूरन काम।
'व्यास' अगनित पतित उधरे, लेत पावन नाम॥

[६१]　　　　　　　　राग सारंग व बिहागरौ

राधिका–रमन जय।
नवल कुंवरि वृन्दावन-वासी, निज दासन दिखरावत सुख-चय।

जाके चरन-कमल सेवत नित, रसिक अनन्य भये सब निरभय।
ताके नाम - रूप गुन गावत, पावत महा प्रसाद रसालय ।।
नव निकुंज रति-पुँजनि बरषत, परसत अंग ललित लीलामय।
ताकी आस 'व्यास' नहिं छाँड़हिं, जद्यपि लोक भये सब निर्दय ।।

[६२] राग धनाश्री

महिमा स्याम की हम जानी।
जेहि प्रताप बृन्दावन सेवत, मो हू से अभिमानी ।।
हम हू सेन कृपा करि दैहै, दरसन राधारानी।
'व्यासदासि' नव केलि विलोकति, बिन ही मोल बिकानी ।।

[६३] राग धनाश्री

श्रीराधावल्लभ नमो-नमो।
कुँज-निकुंज-पुंज रति-रस में, रूप-रासि जहाँ, नमो-नमो ।।
सुख-सागर, गुन-नागर, रस-निधि, रस सुधंग रँग, नमो-नमो ।
स्याम सरीर, कमलदल लोचन, दुख-मोचन हरि, नमो-नमो ।।
वृन्दाबिपिन-चन्द नँदनन्दन, आनंदकन्द सुख, नमो-नमो ।
सर्वोपरि, सर्वोपम, निसि-दिन 'व्यासदास' प्रभु नमो-नमो ।।

[६४] राग सारंग

सबको भाँवतौ राधावर।
पूत जशोदा कौ नँदनन्दन, ब्रज-लाड़िलौ स्याम-सुन्दर ।।
कुंजबिहारी सदा सिंगारी, गावत-नाचत सदा सुघर।
कोक कलाकुल, रसिक मुकटमनि, बारिज मुख सुख सागर ।।
महा पतित पावन चरननि के, सरन रहत काकौ डर।
'व्यास' अनन्य रसिक-मण्डल कौ पोसक मानसरोवर ।।

[६५] राग सारंग

हरि सौ दाता भयौ न आहि।
सुख करिवे कौं, दुख हरिवे कौं, सब जग देख्यौ चाहि ।।

भक्तन के बस हरि ह्वै जानत, जसु दीनौं जसुदाहि।
जाहि भक्त की लाज - बड़ाई दीनीं द्रुपद - सुताहि॥
जाकी दान - मान की महिमा, सकत न वेद सराहि।
जिहि चिरवा लै कमला दीनो, मन्द न माँगत ताहि॥
पतित पिंगलहिं आलिंगन दै, रूप दियौ कुबजाहि।
हरि न पाइयतु 'व्यास' भक्ति बिनु, मिटै न मन की ढाहि॥

[६६] राग सारंग

भयौ न ह्वै है हरि सौ प्यारौ।
सुन्यौ न देख्यौ हरि सौं हितुवा, सुत-माता-महतारौ॥
ज्यों रंक सों प्रीति करत कोऊ, अपनौ काज बिगारौ।
गरजत भक्त भरोसैं हरि के, ज्यों पानिप मनि गारौ॥
कामधेनु, कलपद्रुम कौ सेवक, अजहिन करौ कुरारौ।
सिंह-सरन रहि स्यारहिं डरपत, बिनु काजर मुँह कारौ॥
भव-सागर डरि स्वान-पूँछ गहि, सो को, जो न दुखारौ।
'व्यास' आस तजि वृन्दावन में, दीजै दाब सबारौ॥

[६७] राग सारंग

हरि कौ सौं हित न कियौ अब काहू।
और सबै दुखदाता, लातनि मारत लागैं पाहू॥
ऐसौ सुख सपनैं नहिं दीनों, गर्भ बसत माता हू।
अपनौ विषै भोग पोषन लगि, कीनौ कपट पिता हू॥
बोलि तोतरे बोल, चोरि चित, बित लीनौ बेटा हू।
अपनै काज पतिव्रत लीनौ, बस कीनी अबला हू॥
भाइप प्रीति समीति मिलैं चित, घर लीनौ भैया हू।
कपट प्रीति परतीति बढ़ाई, अपने काज सखा हू॥
ब्याह बरैती मिस रूठ्यौ करि, घर लूटचौ सजना हू।
धन कारन मन हर्यौ कर्यौ सब, स्वारथ लगि राजा हू॥

हरि गुन बिमल अगाध सिंधु की, को जाने सीमा हू।
क्रूर, कुटिल, कामी, अपराधी, 'व्यास' बिमुख सेवा हू।।

[६८] राग सारंग जयतिश्री

हरि दासनि के बस ह्वै जानत।
निगम अगोचर, आपुन हित करि, जन के जसहिं बखानत।।
राई सौ गुन देखत गिरि सम, दोष न मन महँ आनत।
थोरैं ही रति करत बहुत, बहु दीने तनक न मानत।।
जानराइ अभिमानिनि, दीननि तबहीं हँसि पहिचानत।
सर्वसु देत भुरायैं ही, कपटिनि सों चतुराई ठानत।।
संतन के अपराध छमत, अपनै करतब ही हिरानत।
'व्यास' भक्ति की यहै रीति, अपनैं सन्तनि सों मन मानत।।

[६९] राग सारंग व धनाश्री

सोहत पराधीनता स्यामहिं।
जाके बल रस सिन्धु बढ़ायौ, गावत को गुन ग्रामहिं।।
मारत बाँधत सुख पावत हरि, छोरि न डारत दामहिं।
रोवत नहीं दुखित ह्वै जानत, प्रेम नेम जसुधा महिं।।
आपु बँधाइ छुड़ाइब दीननि देत विषय निह कामहिं।
अद्भुत वैभव कही न जाय सुक श्री भागवत कथा महिं।।
मोद विनोद बिचित्र बिराजत, निस दिन चन्द ललामहिं।
'व्यास' रूप गुन सुख रस आनँद कन्द वृन्द राधा महिं।।

[७०] राग सारंग

असरन सरन स्याम जू कौ बानौ।
बड़ौ बिरद पतितन कौ पावन, भक्तन हाथ बिकानौ।
सुक नारद ज़ाकौ जस गावत, शिव विरञ्चि उरगानौ।
हित ही की हित मानत नागर, गनत न रंक, न रानौ।।
दयासिंधु दीननि कौ बांधव, प्रगट भागवत कहानौ।
रजधानी वृन्दावन जाकी, लोक चतुर्दस थानौ।।

ऐसे ठाकुर कौ हौं सेवक, कैसैं औरहिं मानौं।
'व्यास' कलंक लगै तो जननी, जो न पितहिं पहिचानौं।

[७१] राग कान्
राधाबल्लभ मेरौ प्यारौ।
सर्बोपरि सर्बहिन कौ ठाकुर, सब सुखदानि हमारौ।
ब्रज-वृन्दावन-नाइक, सेवा - लाइक स्याम उज्यारौ।
प्रीति-रीति पहिचानै-जानै, रसिक अनन्यनि कौ रखवारौ॥
स्याम कमल दल लोचन, दुख-मोचन नैननि कौ तारौ।
अवतारी, सब अवतारन कौ महतारी - महतारौ॥
मूरतिवंत-काम गोपिन कौं, गऊ - गोप कौ गारौ।
'व्यासदास' कौ प्रान-जीवन-धन, छिन न हृदै तें टारौ॥

[७२] राग कमोद व धनाश्री
देखौ माई, शोभा नागरि-नट की।
जाके दरश-परस रस राचै, विथकित मनसा मन की॥
जाकौ गुन लागत हो भागै, साँपिनि तृष्णा धन की।
जिहिं रस गोपी गोपालहिं भजि, तजि माया गृह तन की॥
जहाँ चन्द्रिका मन्द होत नहिं, राधा बिधु-आनन की।
पीवत नन्दकिशोर चकोरहिं बाढ़ी चोप मदन की॥
जाकी कथा परीछत सुनि, तजि त्रास विषी भय भव की।
जिहिं आनन्द'व्यासहिं' सुख परिहरि, आशा जननी-थन की॥

[७३] राग सारंग व धनाश्री
स्याम सु धम कौ नाहीं अंत।
जाकैं कोटि रमा सीं दासी, पद सेवत रति–कंत॥
कोटि कोटि लंका सुमेरु से, रंकनि हँसि बगसंत।
शिव, बिरञ्चि, मघवा, कुबेर, जाके रोमनि के तंत॥
रजधानी बन कुञ्जमहल महली सरद बसंत।
श्री राधा रानी, सहचरि गोपी, सुख पुंजनि बरषंत॥

नागर मन मोहन रस - सागर, अर्थ अपार अनंत।
'व्यास' स्वामिनी भोग भोगवत, नव जोवन मयमंत ॥

[७४] राग सारंग व घनाश्री

श्री बृन्दावन के राजा, स्याम, राधिका रानी।
तीन पदारथ करत मँजूरी, मुक्ति भरत जहँ पानी ॥
करमी - धरमी बटत जेबरी, घरु छावत हैं ज्ञानी।
जोगी, जती, तपी, सन्यासी, इनहू जानी ॥
पनिहारि बेद, पुराण बिझनियाँ, कहत-सुनत यह बानी।
घर-घर प्रेम-भक्ति की महिमा, 'व्यास' सबनि पहिचानी ॥

[७५] राग सारंग (चर्चरी ताल)

कुंवर चक्रचूड़ा नृपति मनि साँवरौ, राधिका तरुनि-मनि पट्टरानी।
ब्रह्म गृह आदि बैकुण्ठ पर्यन्त, सब लोक थानैत, बन राजधानी ॥
छयानवै-कोटि बाग सींचत जहाँ, मुक्ति चारौं जहाँ भरत पानी।
रवि-शशि पाहरू, पवन जन, इन्दिरा चरन-दासी, भाट निगम-बानी ॥
...नं कुलवाल, सुक सूत, नारद चारु, फिरत चर, चार सनकादि ज्ञानी।
...त गुन पौरिया, काल बंदुआ, कर्म डाँडियै, काम-रति सुख-निसानी ॥
...नक मरकत धरनि, कुंज कुसुमति, महलमधि कमनीय सयनीय ठानो।
...न न बिछुरत दोऊ, जात नहिं तहाँ कोऊ, 'व्यास' महलन लियें पीकदानो

[७६] राग धनाश्री

स्यामहिं उपमा दीजै काको ?
वृन्दावन सौ घर है जाकौ, राधा दुलहिन ताकी ॥
नारद, सुक, जयदेव बखानी, अद्भुत कीरति जाकी।
जाकौ वैभव देखत कमला - पति में रही न बाकी ॥
इहिं रस नवधा भक्ति उबीठी, रति भागवत-कथा की।
रहन-कहन सबही तें न्यारी, 'व्यास' अनन्य सभा की ॥

[७७] राग सारंग

यह छबि को कवि बरन सकै !
जब राधा मोहन सनमुख ह्वै, भृकुटि-बिलास तकै ॥

सेष-असेष कोटि चतुरानन, बरनत बदन थकैं।
उपमा जितीं तितीं सब झूठीं, कत मन-बुधि भटकैं ॥
जिते तिते बक्ता अरु श्रोता, कलपि-कलपि सुबकैं।
आगम-निगम सबै पचिहारे, 'व्यासै'-मति तनकैं ॥

[७८]   राग विलावल व सा

श्रीराधाप्यारी के चरनारबिन्द, शीतल सुखदाई।
कोटि चन्द मन्द करत, नख-बिधु जुन्हाई ॥
ताप, साप, रोग, सोग, दारुन दुख-हारी।
कालकूट - दुष्ट-दवन, कुंजभवन - चारी ॥
स्याम हृदय भूषन जुत, दूषन जित सङ्गी।
श्रीबृन्दावन - धूलि - धूसर, रास-रसिक - रङ्गी ॥
सरनागत अभय बिरद, पतित पावन बानै।
'व्यास' से अति अधम आतुर कों, कौन समानै ॥

[७९]   राग सारंग व धना

धनि तेरी माता, जिनि तू जाई।
ब्रज-नरेस बृषभान धन्य, जिहिं नागरि कुंवरि खिलाई।
धन्य श्रीदाम भैय्या तेरौ, कहत छबीली बाई।
धन्य बरसानौ, हरिपुर हू तें ताकी बहुत बड़ाई ॥
धन्य स्याम बड़भागी तेरौ नागर कुँवर सदाई।
धन्य नन्द की रानी जसुदा, जाकी बहू कहाई ॥
धन्य कुंज सुख - पुंजनि, बरसत तामैं तू सुखदाई।
धन्य पुहुप - साखा - द्रुम - पल्लव, जाकी सेज बनाई ॥
धन्य कल्पतरु बंसीवट, धनि वर बिहार रह्यौ छाई।
धन्य जमुन, जाकौ जल निर्मल अँचवत सदा अघाई ॥
धन्य रास की धरनी, जिहिं तू रुचि कै सदा नचाई।
धन्य सखी ललितादिक, निशिदिन निरखत केलि सुहाई।
धन्य अनन्य 'व्यास' की रसना, जेहिं रस-कीच मचाई ॥

[८०] राग केदारौ

११—उत्तम सिद्ध भक्त लक्षण—

श्रीकृष्ण-कृपा तें सब बनि आवै ।
सतगुरु मिलै साधु की संगति सदा, असाधु न भावै ।।
चित इंद्रीजित, बितु न रुचै मन, निजु जनही कों धावै ।
लोचन दुखमोचन मुख देखत, रसना हरि - गुन गावै ।।
दरस भक्ति भागवत तीस - सात जगदीस बतावै ।
रास - बिलास - माधुरी राधा, बृन्दाविपिन बसावै ।।
सो जु कहा उपजै गुन हरि भजि, दोष दुखनि बिसरावै ।।
दोष रहित, गुन रहित, 'व्यास' अंधे की दई चरावै ।।

[८१] राग सारंग

रुचत मोंहि वृन्दावन कौ साग ।
कंद - मूल, फल - फूल जीवका मैं पाई बड़ भाग ।।
घृत, मधु, मिश्री, मेवा, मैदा, मेरे भायें छाग ।
एक गाय पै वारों, कोटिक ऐरावति से नाग ।।
जमुना जल पर वारौं, सोमपान से कोटिक जाग ।
श्री राधापति पर वारौं, कोटि रमा के सुभग सुहाग ।।
साँची माँग किशोरी के सिर, मोहन के शिर पाग ।
बंशीवट पर वारौं कोटिक, देव - कल्पतरु - बाग ।।
गोपिन की प्रीतिंहि पूजत, सुक - नारद अनुराग ।
कुंज - केलि मीठो है, बिरह - भक्ति सीठी ज्यों आग ।।
'व्यास'[1] विलास रास - रस पीवत, मिटै हृदय के दाग ।।

[८२] राग गौरी व नट

मेरौ हरि-नागर सों मन मान्यौ ।
अगम-निगम पथ छाँड़ि दियौ है, भली भई सबरे जग जान्यौ ।।

---

[1] पाठान्तर—'व्यास', 'श्रीव्यास' ।

मात-पिता की सीख न मानी, और तजी कुल - कान्यौ ।
'व्यासदास' प्रभु के मिलिवे बिनु,काहि रुचै भोजन-पान्यौ ।।

[८३] राग गौरी व नट

मोहिं वृन्दावन--रज सों काज ।
माला, मुद्रा, स्याम बिंदुनी, तिलकु हमारौ साज ।।
जमुना जल पावन सु हमारें, भोजन ब्रज कौ नाज ।
कुँज-केलि-कौतुक[1] नैननि - सुख, राधा-धव कौ राज ।।
निसि-दिन दुहुँ दिशि सेवा मेवा, ताल-पखावज बाज ।
निरतत नटनागर भावत अति, 'व्यास'हि साधु-समाज ।।

[८४] राग गौरी व नट

सोई साधु, जो हरि गुन गाया ।[2] सोई साधु जु छाँड़ै माया ।।
माया कौ फल गृह, सुत, जाया । दामिनि कैसी चमकिनि काया ।
यह संसार धूरि की छाया । सपनें हरि सों मन न लगाया ।
जार भरतार कियौ दुख पाया । 'व्यास'सुहागिल स्याम रिझाया ।।

[८५] राग गौरी व नट

माया भक्त न लगतै जाई ।
जद्यपि कान्ह कुँवर की बहिनी, जशुदा मैया जाई ।।
जाके मोहैं तन - धन भावै, मन मैं नारि पराई ।
जस की हानि होत ताके बस, पशु ज्यों करत लराई ।।
वासों प्रीति करत हरि बिसरत, संत जना सब भाई ।
सोई साधु जु ताहि तजै, हरि-चरन भजै चित लाई ।।
नाचति जगहिं, नचावति मम शिर, तोरति तार रिसाई ।
महित बिनती सुनहुँ 'व्यास' की, बन में होति हँसाई ।।

[८६] राग गौरी व नट

हरिदासन के निकट न आवत प्रेत, पितर, जमदूत ।
अरु जोगी, भोगी, संन्यासी, पण्डित, मुण्डित, धूत ।।

पाठान्तर—१. 'कौतुक', 'कौतिक':
२. प्रति में यह चरण नहीं ।

ग्रह, गनेश, सुरेश, शिवा, शिव डर करि भाजत भूत ।
सिधि-निधि, बिधि-निषेध हरिनामहिं, डरपत रहत कपूत ।।
सुख - दुख, पाप - पुन्य मायामय भीत सहत आकूत ।
सब की आस-त्रास तजि 'व्यास'हिं भावत भक्त सपूत ।।

[८७] राग सारंग व धनाश्री

श्रीबृन्दावन न तजै अधिकारी ।
जाके मन परतीति रीति नहिं, ताके बस न बिहारी ।।
कैसैं जारहिं भजिहै, तजिहै भरतारहिं कुल - नारी ।
भागी भक्ति लोभ के आगै, मन्त्री ढोम भिखारी ।।
को-को भयौ न पर - घर हरुवौ, तात लजी महतारी ।
मालहिं पहिरि गुपालहिं छाँड़त, गुरुहिं, दिवावत गारी ।।
ज्यौं गजकुम्भ बिदारहिं सिंह बालक झपटै ज्यौं स्यारी ।
ऐसैं 'व्यास' सूर कायर की, सङ्गति हरि करि न्यारी ।।

[८८] राग सारंग व धनाश्री

बन परमारथ पथ हरि मेरौ ।
अरथ करत है अनरथमैं कहा, मारतु हैं घर ही में घेरौ ।।
कियौ अनन्य बीच नीचं ह्वै, आइ फब्यौ रसिकनि कौ टेरौ ।
'व्यास' आस कै स्याम भरोसौ, दुख के बीज बये रस-खेरौ ।।

[८९] राग सारंग व धनाश्री

श्रीवृन्दावन मेरी घर बात ।
जाहि पीठि दै दीठि करौं कित,जित-तित दुखित जीव बिललात ।।
स्याम सचे सुख-सागर कुंजनि, नागर रसिक अनन्य खटात ।
सहज माधुरी कौ रस बरषत, हरषत गोरे-साँवल गात ।।
सुख मुख-चंद-सुधा रससुनि-सुनि,श्रवननि आनँद सृष्टि अघात ।
नाद - बिनोद रास-रस माते, कोउ न रंगनि अंग समात ।।
बिबि अरबिंद द्रवत मकरंदहिं, पियहिं जिबावहिं दल-पत्र चुचात ।
या रस बिनु फीके सब साधन, ज्यों दूलह बिनु 'व्यास' बरात ।।

[९०] राग सारंग व धनाश्री

यह वृन्दावन मेरी सम्पति ।
इहिलोक, परलोक वृन्दावन मेरौ,पुरुषारथ-परमारथ, गथु-गति ।
साधन साधु संतत वृन्दावन, राग-रंग गुन-गुनी जहाँ अति।
भक्ति भागवत वृन्दावन मेरौ, मात, पिता, भैया, गुरु सम्मति ॥
मन्दिर जगमोहन मन - कोठौ, बृन्दावन सेवा-मेवा निति।
दाता दान - मान वृन्दावन, छिन छूटै ना रहै प्रान पति ॥
जहाँ निकुंज पुंज सुख बिहरत, राधा-मोहन मोहे काम-रति
तहाँ 'व्यास' बनिता भयौ चाहत,चारचौ बेद करत मत आरति ॥

[९१] राग सारंग व धनाश्री

हमारैं वृन्दावन ब्यौहार ।
सम्पति गति वृन्दावन मेरैं, करम-धरम करतार ।।
स्वारथ, परमारथ वृन्दावन गथ-पथ बिधि-ब्यौपार ।
वृन्दाविपिन गोत-कुल मेरैं, कुल-विद्या-आचार ।।
रूप-शील वृन्दाबन मेरैं, गुन गारौ सिंगार ।
बरष, मास, रितु, पच्छ,ऐन,जुग,कल्प सबै तिथि, बार ।।
फागु, दिबारी, [illegible] पारबन वृन्दावन त्यौहार ।
सूर सुघर वृन्दावन मेरैं, रसिक अनन्य उदार ।।
बंधु सहोदर - सुत वृन्दावन, राजा राज भण्डार ।
श्री राधा-ललितादिक मेरैं, जीवन - प्रान - अधार ।।
सर्बसु 'व्यासदास' कौ बनि है, वृन्दावनहिं अभार ।।

[९२] राग सारंग व धनाश्री

जाकी उपासना, ताही की बासना, ताही कौं नाम-रूप-गुन गाइयै
यहै अनन्य धर्म परिपाटी, वृन्दावन बसि अनत न जाइयै।
सोई बिभचारी आन कहै,आन करै, ताकौ मुख देखैं,दारुन दुख पाइयै
'व्यास' होइ उपहास त्रास कियैं,आस अछत, कित दास कहाइयै।

[६३] राग सारंग

रसिक अनन्य हमारी जाति ।
कुल देवी राधा, बरसानौ खेरौ, ब्रजवासिन सों पाँति ।।
गोत गोपाल, जनेऊ माला, सिखा सिखँडि, हरि मन्दिर भाल ।
हरि गुन नाम बेद धुनि सुनियत, मूंज पखावज, कुस करताल ।।
साखा जमुना, हरि-लीला षट कर्म, प्रसाद प्रान-धन रास ।
सेवा बिधि-निषेध, जड़ संगति, वृत्ति सदा वृन्दावन बास ।।
सुमृत भागवत, कृष्ण-नाम संध्या, तर्पन गायत्री जाप ।
बंशी रिषि, जजमान कल्पतरु, 'व्यास'न देत असीम-सराप ।।

[६४] राग सारंग

अनन्यनि कौन की परवाहि ।
श्रीकुंज बिहारी की आसा करि, लै कमरी करवाहि ।।
कोटि मुकति सुख होत, गोखरू जबै गड़ै तरवाहि ।
श्री बृन्दावन के देखत भाजै नैननि को हरवाहि ।।
जमुना कूल, मूल - फल - फूलत, गोरस की भरवाहि ।
निसि-दिन श्याम कामवस सेवत, राधा की घरवाहि ।।
रीझत जाहि राजसी[1] जब तब, भारत पाथर वाहि ।
इतनो आस 'व्यास' तजि भजियै, गुदी बाँधि सरवाहि ।।

[६५] राग सारंग

अनन्य ब्रत खाँडे की सी धार ।
इत-उत डगत जगत हिततैं हरि, फेर न करत सम्हार ।।
कहा व्यास कुल-कर्मनि छांड़ै, जो लगि बिषय बिकार ।
बिनु प्रेमहिं, न प्रसाद नैन तहाँ; हरि न ग्रहत ज्यौनार ।।
कौन काम कीरति बिनु प्रीतहिं, गनिका कौसौ जार ।
'ब्यासदास' की पति मति नासै, गयैं पराये द्वार ।।

पाठान्तर—१. राजसी, तामसी ।

[६६] राग सारंग

मरै, कै मारै साँचौ सूर ।
पोठि न देइ, दीठि कै अरि-दल, सुनत समर के तूर ।।
जनम भूमि तजि पतिपद भजई, फिरै न सलिता पूर ।
बिरद सँभारि गारि के डर, रजपूत जु मरहिं मंजूर ।।
वैसांदुर डर सती न उलटै, सिर में मेलि सिंदूर ।
ऐसैं ही शीश सहै हथ्यारहिं, मुख मुरै न छाँड़ि गरूर ।।
कहत आपनें मुख हरवाई, भख्यौ दुरै न कपूर ।
सर्बोपरि हरि भक्ति 'ब्यास' कैं, रवा रती नहिं बूर ।।

[६७] राग सारंग

ऐसैंहि बसियै ब्रज बीथिननि ।
साधुन के पनवारे चुन चुन, उदर पोषियत सीथिनि ।।
घूरनि में के बीन चिनघटा, रछ्या कीजै सीतिनि ।
कुंज कुंज प्रति लता लोटि, उड़ रज लागै अंगोथिनि ।।
नित प्रति दरस स्याम स्यामा कौ,नित जमुना जल पीतिनि ।
ऐसेंहि 'ब्यास' होत तन पावन, इहिं बिधि मिलत अतीतिनि ।।

[६८] राग रामकली

तेई रसिक अनन्य जानिवै ।
जिनकों बिषय बिकार न, हरि सों रति, तेई साधु मानिवै ।।
तिनकी संगति पतित सु उधरे, जौ बारक घर आनिबै ।
तिनके चरनोदक सों; अपने नख सिख गातनि सानिवैं ।।
तिनकी पावन जूठनि जेंवत; तब ही हरि हिय आनिबै ।
तिनके बचन श्रवन सुनि तिहिं छिन, मन संदेह भानिवै ।।
तिनकी जीवनि धन वृन्दावन, जीवत मरत बखानिवैं ।
'ब्यास' राधिका-रमन भवन बिनु तेई क्यों पहिचानिवैं ।।

[६९] राग रामकली

श्री वृन्दावन साँचौ है जाकैं ।
बिषई बिषै भिखारी दाता, निकट न आवै ताकैं ।।

बसनी बसनहिं गिरत न जानैं, जीव कोऊ मद छाकैं ॥
ऐसैं ही रससिंधु मगन भयैं, रहै अविद्या काकैं ॥
कुञ्ज-केलि अनभौ है जाकैं, सो चलै न पथ अबला कैं ।
जैसैं निर्धन हूँ जु न[1] जैहै बोलैंहू गनिका कैं ॥
जैसैं सिंघनि के सुत भूखे, जाचत नहिं बिलवा कैं ।
काम स्याम सों जिनहिं, ते सुने न जात रमाकैं ॥
ज्यों अनयासा सम्पति आवै, ब्याहैं राजसुता कैं ।
ऐसैं ही 'व्यास' भक्ति पायैं सुख, द्रवत हैं स्याम कृपा कैं ॥

[१००] राग राम-कली

जाके मन बसै बृन्दावन ।
सोई रसिक अनन्य धन्य, जाकैं हित राधा-मोहन ॥
ताहि नित्य बिहार फुरै, बन-लीला कौ अनुकरन ।
विषय - बासना नाहिन जाकैं, सुधरै अन्तहकरन ॥
लोक-बेद कौ भेद न जाकैं, श्री भागवत सौ धन ।
ताकैं 'व्यास' रास-रस बरषत, बहि गई कामिनि-कञ्चन ॥

[१०१] राग राम-कली

हरि बिनु और न सुनौं-कहौं ।
श्री गुरु की मैं सपथ करी है, यौं घर माँझ रहौं ॥
काहू के दोष न मन में आनौं, सबके मनहिं गहौं ।
अन्तरजामी हरि सब ही के, हौं उपहास सहौं ॥
जीवनि के चित थिर न रहत हैं, सुख-दुख धरवु न हौं ।
'व्यास'ह्रिं आस स्याम-स्यामा सौं, प्रीति कियैं निबहौं ॥

[१०२] राग राम-कली

मोहि भरोसौ है हरि ही कौ ।
मोकों सरन न और स्याम बिनु, लागत सब जग फीकौ ॥

पाठान्तर—१. 'जु न', 'जन' ।

दीननि की मनसा कौ दाता, परम भावतौ जी कौ।
जाके बल कमला सों तोरी, काज भयौ अति नीकौ।
चारि पदारथ, सर्व सिद्धि, नव निधि पर डारत नहिं पीकौ।
आँन धेव सपनैं नहिं जाचौं, ज्यों धन जानौं धी कौ।
तिनुका कैसैं रोकि सकै, पावस परवाह नदी कौ।
हरि अनुरागिहिं लगै सराप न, सुर-नर जती सती कौ।
जैसैं मीनहिं जल कौ बल, अलि-हंसहिं कमल-कली कौ।
'व्यास'हिं आस स्याम-स्यामा की, ज्यों बालक आधार चुची कौ।

[१०३] राग राम-कली

नैननि देखौ सोई भावैं।
जोई कपट-लोभ तजिकैं श्री राधावल्लभ के गुन गावैं॥
रसिक अनन्य भक्त मण्डल की मीठी बात सुनावैं।
ताके चरन-सरन ह्वै रहियै, दिन प्रति रास दिखावैं॥
स्यामा-स्याम करैं सोई, जो 'व्यास' दास सुख पावैं॥

[१०४] राग राम-कली

भक्ति में कहा जनेऊ-जाति।
सब दूषन भूषन विप्रन कें, पति छू घरनि घिनाति॥
कहा हरे रँग भाँग विराजत, तुलसी न में समाति।
सोहति नहीं सुहागिल के सँग, सौत सुरत्ति इतराति॥
सन्ध्या-तरपन-गायत्री तजि, भजि माला-मन्त्र सजाति।
'व्यास' दास कें सुख सर्वोपरि बेद बिदित बिख्याति॥

[१०५] राग सारंग

रसिक अनन्य भगति कलु-भोगि।
जिनके केवल राधावल्लभ बृन्दावन रस भोगि॥
जे सुख-सम्पति सुपन न देखत, ज्ञान-कर्म-व्रत-जोगि।
जिनके सहज सनेही, स्यामा-स्याम सदा सञ्जोगि॥

नीरस पसु परसौ नहिं जानै, अभिमानी भव जोगि ।
'व्यास'जु हरि तजि आनहिं मानत,ह्वै है तुरक दुरोगि ।।

[१०६] राग सारंग

गोपालै जब भजियै तब नीको ।
जोतिष, निगम, पुरान सबै ठग, पढ़ै जान है जीकौ ।
भद्रा भली, भरनी भव हरनी, चलत मेघ अरु छीकौ ।।
'व्यासदास' धन-धर्म बिचारैं, सो प्रेमी कौड़ी कौ ।।

[१०७] राग सारंग

जैयै कौन के अब द्वार ।
जो जिय होइ प्रीति काहू कें, दुख सहियै सौ बार ।।
घर-घर राजस-तामस बाढ़्यौ, धन-जोबन कौ गार ।
काम बिबस ह्वै दान देत नीचन कों, होत उदार ।।
साधु न सूझत, बात न बूझत, ये कलि के ब्यौहार ।
'व्यासदास' कत भाजि उबरियै, परियै माँझी धार ।।

१२. मध्यम साधक भक्त लक्षण—

[१०८] राग सारंग

होइब सोई हरि जो करि है ।
तजि चिंता चित चरन-सरन रहि,भावी सकल मिटरिहै ।।
करिहै लाज नाम-नाते की, यह बिनती मन धरिहै ।
दीनदयाल बिरद साँचौ करि, हरिदासन-दुख[1] हरिहै ।।
सिंहनि-सिंह बीच बैठ्यौ सुत, कैसें स्यारहिं डरिहै ।
ऐसैं स्यामा-स्यामहिं थरुदै, डरिकैं कौन बिचरिहै ।।
सुनियत सुक मुनि-बचन चहूँ जुग,हरि दोषनि संहरिहै ।
साधुन कौ अपराध करत, मधुसाहि न ताहि गुदरिहै ।।

पाठान्तर—१. 'दासन-दुख' । 'दारुन-दुख' । दारुण-दुख'

[१०९] राग बिलावल

जगजीवन है जीवनि जग की ।
दीन हरहिं आधीन बजे सें औरन गति बोहित के खग की ।।
जैसें दम्भु अम्बु महँ ठानत, होत जीविका बग की ।
ऐसें कपटी नट भट नाटकु[1] पिटभरि करत ठगौरी ठग की ।।
पंडित, मुंडित, तुंड बल भोगी, आसा बढ़ं कुटुंबहिं मग की ।
सो को 'व्यास' न बँध्यौ दुरासा, ज्यों गनिकाहि कठिन कुच-भग की ।।

[११०] राग सारंग व बिलावल

कौनें सुख पायौ बिनु स्यामहिं ।
सेवत सदा बबूरन, कैसें खायौ चाहत आमहिं ।।
सिह सरन सूझत नहिं बूझत पढ़्यौ जु सून्य सभा महिं ।।
परम पतिव्रत कौ सुख नाहिन, सुपनैं हू गनिका महिं ।
विकल बुद्धि, मन सुद्धि न उपजै, काम-क्रोध-माया महिं ।
गुरुकुलघरअभिमानहिं जाकैं, 'व्यास' भक्तिनहिं ता महिं ।।

[१११] राग धनाश्री

ऐसौ काकौ भाग, जु दिन प्रति स्यामा-स्यामहिं रुचि सों गावै ।
जाकी चरन-सरन ह्वै रहियें, तौ वृन्दावन स्याम बसावै ।।
जाकी जूठन जौ खइयै, तौ ताप - पाप गोपाल नसावै ।
'व्यास दास ताही कै हूजो, जाहि भक्ति बिनु और न भावै ।।

[११२] राग धनाश्री

कहा-कहा नहीं सहत सरीर ?
स्याम-सरन बिनु कर्म सहाय न, जनम-मरन की पीर ।।
करुनावन्त साधु - सङ्गत बिनु, मनहिं देइ को धीर ?
भक्ति-भागवत बिनु को मेटै, सुख दै दुख की भीर ।।
बिनु अपराध चहूँ दिसि बरषत, पिसुन बचन अति तीर ।
कृष्न - कृपा - कवची तें उबरे, पोच बढ़ी उर पीर ।।

पाठान्तर—१. 'नाटकु', 'नाइक'

नामा, सैंन, धना रैंदास, दीनता फुरी कबीर।
तिनकी बात सुनत स्रवनन सुख, बरषत नैननि नीर॥
चेतहु भैया बेगि, कलि बाढ़ी काल-नदी गंभीर।
'व्यास' बचन बल बृन्दावन बसि; सेवहु कुंज-कुटीर॥

[११३] राग नट

को-को न गयौ, को-को न जैहै!
इहिं संसार असार भक्ति बिनु, दूजौ और न रैहै॥
हरि-विमुख नर आतमघाती, नरक परत न अघैहै।
सन्त-चरन दृढ़ सरन नाव बिनु, काल-नदी में बैहै॥
सुधासिंधु हरि-नाम निकट तजि, विषयी बिषयन खैहैं।
'व्यास' बचन कौ कियौ निरादर, फिर पाछैं पछितैहैं॥

[११४] राग केदारौ तथा नट

कबहूँ नीके करि हरि न बखानै।
चरन-कमल सुखरासि स्याम के, ते तजि बिषयनि हाथ बिकानै॥
दिवस गयौ छल करत मनोरथ निसि सोवत झूँठौ बररानै।
इहिं विधि मनुषा जनम गँवायौ, श्रीपति कहि धौ कब पहिचानै।
जेहिं सुमिरत त्रैताप नसत हैं; ते आराधि भवन नहिं आनै।
समै गयौं गोपाल बिमुख भयैं, तातें 'व्यास' बहुत पछितानै॥

[११५] सारंग (जयति ताल)

कहा मन या तन पै तू लैहै?
करिलै हित राधा-धव सों तू, पुनि केस काल कर गैहै।
करत कृपनता दूरि धरत धन, तन छूटैं धन कहाँ समैहै।
बाढ़ी तृष्ना कृष्न-कृपा बिनु, पावत हू न अघैहैं॥
सूकर, स्वान, स्यार की खाजी, ता पर का गरवै है!
'व्यास' बचन मानें बिन, जुग-जुग जम के हाथ बिकैहै॥

पाठान्तर १—का गरबै, कहा गवै

[११६]   सारंग (जयति ताल)

छिनु-छिनु ग्रसत तनहिं मन काल।
अजहूँ चेत चरन गहि हरि के, आयौ है कलि-काल ॥
लाज न कीनी राज-सभा महँ, कत कूटत है गाल।
पेट न भरत करत हू चेटक, लोभ परयौ मति चाल ॥
घर-घर भटक्यौ नट के कपि ज्यों, बहुत भयौं न बेहाल।
बिनु हरि-दास निहाल भयौ को, बिमुख भयें न निहाल ॥
पुत्र, कलत्र सों नेह बिरस ज्यों, गैया चाटत छाल।
दीनन ही हरि राखि लेत ज्यों, मीनन सीतल ताल ॥
गीध मृगन वे तकि-तकि मारत, जैसें कालहिं काल।
ऐसें कपट प्रीति की संगति, सदा बढ़ै उर साल ॥
मन दुख, आँखिन दुख, स्रवननि दुख, सुख दै हरे कृपाल।
'व्यासदास' की बिनती सुनि, पुनि कृपा करी नँदलाल ॥

[११७]   राग केदारो

धर्म छूटत छूटहिं किन प्रान।
जीवत मृतक भयौ अपराधी, तजि गुरु रीति प्रमान ॥
बीधिरवानी करी मूढ़ मति, करि गोरिल गुन-गान।
चढ़ि गादहि सर्बत्र मन्त्र पढ़ि, पाप बजाइ निसान ॥
यह कारौंछि पौंछि है को अब, लै दै कन्या-दान।
माँगर[१] तेल कलस जल धोये, रोवै जड़ बेदान ॥
भक्ति न होत देव पितरन कें, किंकरीन की सान।
चढ़ै काठ की बार-बार क्यों लगत न कूर कड़वान ॥
कपटी अपनौ होइ न कबहूँ, जोंरामीत निदान।
'व्यास' पुनीत न होइ कूकरी कोटिक गंगा-स्नान ॥

२—माँगर, मारग२—जोंरामीतु निदान, ज्योंरामीतुनदान ज्यों रामी तनु दान

[११८] राग सारंग

सत छाँड़ हू तन जैहै।
पाकी छाँड़ि गहत है काची, फिरि पाछैं पछितैहै ।।
हरि के चरन-सरन बिनु जुग-जुग, सिर अप-कीरति रैहै।
ताही कौ तनु, तनु को सोई, जो हरिहो सों हित करि लैहै।
जाही कौ धर्म, धर्म कौ जोई, सो हरि की ओर निवैहै।
जोई गनिका कौ सुत सोई, बिना करं अब कैहै।
ताही कौ कर्म, कर्म कौ सोई, जो असि-धारा ब्रत गैहै ।।
भक्ति-भाव धरि भजै स्याम कों, भली-बुरी सब सैहै।
'व्यास' अनन्य सभा सेवत हू, काल व्याल को खैहै ।।

[११६] राग सारंग

भजहु सुत ! साँचे स्याम पिताहि।
जाके सरन जात ही मिटिहै, दारुन दुख की डाहि ।।
कृपावन्त भगवन्त सुने मैं, छिन छाँड़ौ जिन ताहि।
तेरे सकल मनोरथ पूजे, जो मथुरा लौं जाहि ।।
वे गोपाल दयाल, दीन तू, करिहैं कृपा निवाहि।
और न ठौर अनाथ दुखित कों, मैं देख्यौ जग चाहि ।।
करुना बरुनालय की महिमा, मो पै कही न जाहि।
श्री 'व्यास' दास के प्रभु कों सेवत हारि भई कहु काहि ।।

[१२०] राग सारंग

जौ पै वृन्दावन धन भावै।
तौ कत स्वारथ-परमारथ लगि, मूँढ़ मनहिं दौरावै ।।
नव-निधि अष्ट-सिद्धि बन-वैभव, सपनैं अंत न पावै।
घर-घर भटकत मुक्ति बापुरी, कमलहिं को बतरावै ।।
महा पतितपावन जमुना-जल; भूतल-ताप नसावै।
नव-निकुंज-रति-पुंजनि बरषत, हरि राधे गुन गावै ।।

सदा अधीन रहत नित मोहन, मन लै प्रियहि रिझावै ।
'व्यास स्वामिनी रास-मंडल में, चुटकिनि पियहि नचावै ।।

[१२१]   राग सारंग

श्री वृन्दावन-रस मोहिं भावै हो ।
ताकी हौं बलि जाऊँ सखी री, जो मोहिं आनि सुनावै हो ।।
वेद, पुरान औ भारत भाषैं, सो मोहिं कछु न सुहावैं हो ।
मन, वच, क्रम स्मृत हू कहत ते, मेरे मन नहिं भावै हो ।।
कृष्न-कृपा तब ही भलै जानौं, रसिक अनन्य मिलावै हो ।
'व्यास' दास तेई बड़भागी, जिनके जियँ यह आवै हो ।।

[१२२]   राग सारंग

श्रीवृन्दावन में मंगल मारिवौ ।
जीवनमुक्त सबै ब्रजवासी, पद-रज सों हित करिवौ ।।
जहाँ स्याम बछरा ह्वै, गायन चौंषि तृननि कौ चरिवौ ।
हरि बालक गोपिन पय पीवत, हरि आँकौ-भरि चतिवौ ।।
सात रात-दिन इन्द्र रिसानौ, गोबर्धन कर धरिवौ ।
प्रलय मेघ मघवाहि विमद करि, कहि सबसों नहिं डरिवौ ।।
अघ, बक, बकी बिनासि, रास रचि, सुख-सागर में तरिवौ ।
कुंज-भवन रति-पुंज चयन करि, राधा के बस परिबौ ।।
ऐसे प्रभुहिं पीठि दै, लोभ, रति, माया जीवन जरिवौ ।
श्री गुरु सुकल प्रताप 'व्यास' रस, प्रेमसिंधु उर भरिवौ ।।

[१२३]   राग विलावल तथा सारंग

यह तन वृन्दावन जो पावै, ।
तौ स्वारथ परमारथ मेरौ, रसिक अनन्यनि भावै ।।
दासिनि की दासी करि हरि मोहिं, राधा-रमन दिखावै ।
यहै वासना मेरे मन में और कछू जिनि आवै ।।

पुंज पुन्य तें प्रेम भक्ति-रति, कुंज बिहार बतावै।
सर्बोपरि रस-रीति-प्रीति कौं, बारिध 'व्यास' बढ़ावै।।

[१२४] राग धनाश्री

गाइ गुन तर्नाहि न दीजै ठालि।
साधुनि की सेवा करि लीजै, कौनें देखी कालि।।
काल-बधिक तकि मारतु बिमुखनि, बिषै बिसारी भालि।
हरिहिं क्यों न सम्हारत अजहू, गुरु-बचननि प्रतिपालि।।
छाँड़हु आस,त्रास सब ही की, जग उपहासहिं पेटहिं घालि।
ऐसैं ही दुख 'सहियै, जैसें जर खोदै तें जीवत आलि।।
हरि करिहै हित सुत कौं, जैसैं गैया आवत थालि।
हाथी कौं धरि स्वाँग 'व्यास' यह, तजि कूकर की चालि।।

[१२५] राग धनाश्री तथा कान्हरौ

गाइ मन, मोहन नागर-नटहिं।
कुंजन अन्तर देखि निरन्तर, राधा-छबि की छटहिं।।
केलि नवेलि बेलि-कुल छिन, जिन छांड़ौ बंसीबटहिं।
कमल बिमल जल मृदुल पुलिन, सुख सेवहु जमुना-तटहिं।।
कुसुमित नमित अमित किसलय दल,फल बीथिन में अटकहिं।
गुंजत मधुप-पुंज, पिक बोलत, गौर स्याम लंपटहिं।।
वृन्दावन की सहज संपदा, पावत हू जिन लपटहिं।
'व्यास' आस तजि भजियहु, रसिक अनन्यनि के संघटहिं।।

[१२६] राग धनाश्री तथा कान्हरौ

गाइ लै गोपालै दिन चारि।
काल भुजंग लोक बली तें हरि के चरन उबारि।।
लोभ-कपट तजि, साधु-चरन भजि, लीजै जनम सुधारि।।
दया; दीनता, दास-भाव तें गुरुहिं न आवै गारि।।

रसना इन्द्री अनी अन्यारी, भेदत तनहिं सम्हारि।
साधु-चरन-रज की कवची करि, कबहुँ न आवत हारि ।।
कृष्न-कृपा बिनु तृष्ना बाढ़ी गृह, बन[1] बिषै उजारि।
'व्यास' अकाज करैं जिनि अपनौं, प्यारौ स्याम बिसारि ।।

कनिष्ठ प्रवर्त्तक भक्त लक्षण

[१२७] राग धनाश्री तथा कान्हरो

गुरुहिं न मानत चेली-चेला।
गुरु रोटी पानी सों घूंटत, सिष्य कें दूध पियैं कुकरेला ।।
सिष्यनि के सौने के बासन, गुरु कें कुंड़ी-कुंड़ेला।
चोर चिकनियनि कों बहु आदर, गुरु कों ठेली-ठेला ।।
सिष्य तौ माँखीचूसा सुनियत, गुरु पुनि खाल उचेला।
वह कायर, यह कृपन हठीलौ, ईंट मारि दिखरावतु भेला ।।
श्रीकृष्नभक्ति बिनु बिबि असमंजस, दुखसागरमें झेली-झेला।
'व्यास' आस जे करत सिष्य की, तिनतें भले भँडेला ।।

[१२८] राग बिलावल तथा धनाश्री

गुरु गोंबिदहिं बेंचत हाट।
भक्त न भयौ माँगनौ, जैसें डोम, कलावंत, भाट ।।
कायर कूर कुटिल अपराधी, कबहुँ न होइ निराट।
लोभ सोभ मिलि सबै बिगारचौ, ज्यों रैनी कौ माँट ।।
तन खोवत कामिनि मुख जोवत, लागि काम की साट।
पावत है बिस्राम न मन में, उपजत कोटि उचाट ।।
पर घर गयें पांडुपुत्रनि कों, परिभौ करचौ बिराट।
द्रुपदसुता कीचक हूडारी धर्म-पुत्र कें रुधिर लिलाट ।।
जाके जात सुआवत देखत, बिनु रुचि देत कपाट।
'व्यास' आस करि हरिहिं जु सेवै. ताकी परियौ बाट ।।

पाठान्तर—१ 'बन' 'बिनु'

[१३१] राग सारंग

भक्त ठाड़े भूपनि के द्वार।
उझकत झुकत पौरियन डरपत, गाइ बजाइ सुनावत तार ।।
कहियहु धाय थवाइत ओहित, हमहिं गुदरवी स्वार।
छिन-छिन करत बिदा की बिनती, उपजत कोटि बिकार ।।
बिहसत लसत कोटि वर अन्तर, कलिजुग के अनुसार।
होत अनादर विषयनि कैं जब, तब हीं होत कुतार ।।
चन्दन, माला औ स्याम बिंदुनी, दै उलटे उपहार।
'व्यास' आस लगि नट बाँदर ज्यौं, नाँचत देस उतार ।।

[१३२] राग सारंग

एक भक्ति बिनु घर-घर भटकत।
फिट-फिट होत विषैरस लंपट, साधु-चरन गहि मनहिं न हटकत।।
औरन कैं सुख-संपति देखत, लेत उसास लिलारी पटकत।
दाता कौ दुख, सुख करि मानत, गाइ-नाँचि बातैं कहि मटकत।।
जबलगि कण्ठ उसास न तबलगि,हरि परतीति न कबहूँ अटकत।
गुरु गोविन्द लजाइ, आपनौ, सहि अपमान, दान लै सटकत।।
खोवत[1] खात रहत दिनपसु ज्यौं,जामिनिकामिनिकेउरलटकत।
'व्यास' आस के दास भिखारी, दारुन दुख मैंटे ज्यौं झटकत।।

[१३३] राग सारंग

भटकत फिरत गौर-गुजरात।
सुख-निधि मथुरा वृन्दावन तजि, दामन कों अकुलात ।।
जीवन-मूरि जहाँ की धूरहिं, छाँड़त हू न लजात।
मुक्ति-पुंज समता नहिं पावत, एक कुञ्ज के पात ।।
जाको तक्र सक्र कों दुर्लभ, ताहि न बूझत बात।

पाठान्तर— १ 'खोवत, सोवत, २ लटकत, लपटत

[१२९] राग सारंग

धर्म दुरचौ कलि दई दिखाई ।
कीनौ प्रगट प्रताप आपनौ, सब विपरीति चलाई ।।
धन भयौ मीत, धर्म भयौ बैरी, पतितन सों हितवाई ।
जोगी, जपी, तपी, सन्यासी ब्रत छांड़्यौ अकुलाई ।।
बरनास्रम की कौन चलाई, संतनि हू में आई ।
लीनौ लोभ घेरि आगें दै, सु-कृत चल्यौ पराई ।।
देखत सन्त भयानक लागत, भावत ससुर-जमाई ।
संपति सुकृति सनेह मान चित्त, गृह ब्यौहार बड़ाई ।।
कियौ कुमंत्री लोभ उपायौ, महा मोह जु सहाई ।
काम-क्रोध-मद-मोह-मत्सरा, दीनी देस दुहाई ।।
दान लैन कों बड़े पातकी, मचलनि कों बंभनाई ।
लरन-मरन कों बड़े तामसी, वारौं कोटि कसाई ।।
उपदेसनि कों गुरू गुसाईं, आचरनैं अधमाई ।
'व्यासदास' के सुकृत सांकरे, श्री गोपाल सहाई[1] ।।

[१३०] राग सारंग

मोहि न काहू की परतीति ।
कोऊ अपने धर्म न सांचौ, कासों कीजै प्रीति ।।
कबहुंक ग्यास उपासि दिखावत, लै प्रसाद तजि[2] छीति ।
ह्वै अनन्य सोभा लगि दिन द्वै, सब सों करत समीति ।।
बातनि खेंचत खाल बार की, लीपत भुस पर भीति ।
कुवा परें बादर चाटत हैं, धूम धौरहर ईति ।।
स्वारथ परमारथ पथ बिगरचौ, उत पथ चलत अनीति ।
'व्यास' दिनै चारिक या बन में जानि गही रस-रीति ।।

पाठान्तर—१ (क) 'व्यासदास' कौ सुकृत सांकरे मैं श्रीगोपाल सहाई (ख) 'व्यासदास' कौ सुठि सकरे में श्रीगोपाल सहाई (ग) 'व्यासदास' के सुकृत्य सांकरे श्रीहरिवंश सहाई (घ) 'व्यास' के सुकृत्य सांकरे श्री (हित) हरिवंश सहाई
२ तजि : 'तज'

व्यास' बिबेक बिना संसारहिं, लूटत हू न अघात ।।

[१३४] राग सारंग

लोभी बगरूरे कौ सौ पात ।
सात छानि कौ फूस[1] धूम सौ काके नैन समात ।।
पावस सलिता के तिनका ज्यों, चलत न कहूँ खटात ।
दामनि लगि गनिका लौं, निसदिन सबके हाथ बिकात ।।
जो कोऊ सर्वस देइ, तौऊ संतोष बिना पछितात ।।
अमुका मेरी भाँजी दीनी, ता पर ओंठ चवात ।
निलजन सकुच नहीं घर माहीं, सब ही सों सतरात ।
भड़िहा कूकर लौं कारौ मारत हू ना किकियात ।।
टूटे घरहिं नेक लौं डरपत, जब लगि दरर चुचात ।
सूकर पाइ प्रतिष्ठा बिष्ठा, फूले अंग न मात ।।
अधर लार गंडकहि भजन करि, महा मांस हू खात ।
कृष्न-कृपा बिनु तृष्ना जाकें, सो 'व्यासहिं' न सुहात ।।

[१३५] राग सारंग

लोभिनि बृन्दावन न सुहात ।
भागत भोर चोर लौं पापी, बिमुखन सेवत जात ।।
रहत सोभ्र लगि लोभ धरै मन, दुःख करै बिललात ।
सुखहिं पीठि दै दुख कों दौरत, बहुतनि हाथ बिकात ।।
केलि-कुंज पुंजनि कौ बैभव, नैननि महँ खटात ।
सहज माधुरी कौ रस कैसें नीरस हृदै समात ।।
जहाँ स्याम के धौखैं चौकत तनिकहु खरकैं पात ।
जाहि पीठि दै पति-गति नासै, 'व्यासहिं' सो न सुहात ।।

[१३६] राग सारंग तथा गौरी (अठताल)

कहा भयौ बृन्दावनहिं बसैं ।
जौ लगि व्यापत माया, तौं लगि कह घर तें निकसैं ।।

---

[1] पाठान्तर—फूस, फूल

घन मेवा कों मन्दिर सेवा, करत कोठरी बिषै रसैं।
कोटि-कोटि दण्डवत करैं, कहु भूमि लिलाट घसैं।।
मुँह मीठे, मन सीठे, कपटी बचन, नैंन[1] बिहसैं।
मन्त्र ठगौरी कहूँ न तन्त्र गद मानत बिषय डसैं।।
कंचन हाथ न लेत, कमंडल में मिलाय बिलसैं।
'व्यास' लोभ रति हरि हरिदासनि, परमारथहिं खसैं।।

[१३७]　　राग सारंग तथा गौरी (अठताल)

घटत न अजहूँ देह कौ धर्म।
झूंठ न होत बेद-बानी हरि, फटत नाम कौ भर्म।।
साधन बिबिध, कुठार धार हूँ कठिन, कटत नहिं कर्म।
पंडित मूरख कोऊ न जानत, यह संसै कौं मर्म।।
कहत भागवत साधु संग तें जाय जगत की सर्म।
'व्यास' तबहिं असमंजस मिटिहै, जब ह्वै है मन नर्म।।

[१३८]　　राग सारंग तथा गौरी (अठताल)

साधत बैरागी जड़ बंग।
धातु रसायन ओखदि के बल निसदिन बढ़त अनंग।।
सुक-बचननि कौ रंग न लाग्यौ, भग्यौ नहिं संसै कौ अंग।
बिषै-बिकार गुन उपजे बित लगि, सबै करत चित भंग।।
बन में रहत, गहत कामिनि कुच, सेवत पीन उतंग।
धनि-धनि साधु मानि[2] संतनि तजि, हरि कौ छाँड़ि उछंग।।
लोभ बचन बाननि अँग अंगनि, सोभित निकर निषंग।
'व्यास' आस दृढ़ पासि गरै, तिहिं भावै रागिनि-रंग।।

[१३९]　　राग सारंग तथा (अठताली)

दिन द्वै लोग अनन्य कहायौ।
धन लगि नट कौ भेष काछि कैं, फिरि पाँचनि में आयौ।

पाठान्तर—१ बचन नैन. बचन रचन नैननि—२ धनि धनि साधु मानि धन धन साध मान, धिक धिक अधमनि

सिगरे-बिगरे अगनित गुरु करि, सब कौ जूठौ खायौ।
इत ब्यौहार न उत परमारथ, बीचहिं जनम गमायौ ।।
खौं खोदौ ऊसर बैवे कौं, चोड़ भैंस लै साँढ़[1] मुल्यायौ।
गनिका कौ सुत पितहिं पिण्ड दै, काकौ नाम लिवायौ ।।
अँधरहिं नाँचि दिखायौ जैसें बहिरहिं गाइ सुनायौ।
चढ़ि कागद की नाव नदी कहिं, काहू पार न पायौ ।।
प्रीति न होहि बिना परतीतिहिं, सब संसार नचायौ।
सहज भक्ति बिनु 'ब्यास' आस करि, घर ही माँझ मुसायौ ।।

[१४०] राग बिलावल

कपट न छूटै हरि गुन गावत।
काम न छूटै स्यामहिं सेवत, कामिनिहीं लगि धावत ।।
कहत भागवत घर नहिं छूटै, मत्सर मद न नसावत।
भक्ति करत हू धर्म न छूटै, बाँधे कर्म नचावत ।।
हरिवासर कौ भेद न छूटै, महाप्रसादहिं पावत।
कर्म विषै नहिं छूटै बिषयी, साधुनि कौं समुझावत ।।
देह धर्म कौ संग न छूटै, देह धर्म ही ध्यावत।
कुंजर-सोच करत नहिं डरपत, 'ब्यास' बचन बिसरावत ।।

[१४१] राग बिलावल

कहत सुनत भागवत, बढ़ै स्रोतहिं बक्तहिं अभिमान।
मद-मत्सर न गयौ, न भयौ सुख, रुख न करत चखकान ।।
भक्ति न भई, विषै न गई रति, भूलि-गयौ भगवान ।।
लोभी कौ लोभ न छूटौ, न गयौ कृपन कौ जु सयान ।।
केवल कृष्न-कृपा बिनु, साधु संग बिनु, रंग न आन।
'ब्यास' भक्ति समुझी तबहीं, नारद के सुनत बखान ।।

पाठान्तर—१ भैस लै सांढ़, 'भैंस लै माट, भैंस लै मांट, भैंस लै मांटै

[१४२]   राग सारंग

जैसी भक्ति भागवत बरनी।
तैसी बिरले जानत, मानत कठिन रहनि तें करनी॥
स्वामी, भट्ट, गुसांई अगनित-मति करि गति आचरनी।
प्रीति परस्पर करत न कबहूँ, मिटै न हिय की जरनी॥
धन कारन साधन करि हरि पर धरि सेवा बन घरनी।
बिषै-बासना गई न अजहूँ, छाँड़ि बिगूचे घरनी॥
सहज प्रीति बिना परतीति न, सिस्नोदर की भरनी।
'व्यास' आसि जौ लगि है,तौ लगि,हरि बिनु दुख जिय भरनी॥

[१४३]   राग सारंग

जीवन जन्म भक्ति बिनु खोवत। संत सुहात न हरि मुख जोवत॥
नख-सिख बिषै बिषी दुख भोगत। द्यौसअघाय खायनिसि सोवत॥
पायैं सुख, अपनायैं रोवत। हरि-जस-जल मन मलिन न धोवत॥
पर-धन पर-नारी सुख टोवत। कामधेनु तजि कूकरि लोवत॥
छीरहिं परिहरि,नीरबिलोवत। 'व्यासहिं बरजतदुख-गिरिढोवत॥

[१४४]   राग सारंग

गावत नांचत आवत, लोभ कह।
याही तें अनुराग न उपजत, राग-बैराग छोभ कह॥
मन्त्र-जन्त्र पढ़ि मेलि ठगौरी, बस कीनौ संसार।
स्वामी बहुत, गुसाईं अगनित, भट्टन पैं न उबार॥
भाव बिना सब बिलबिलात, अरु किलकिलात सब तेहू।
'व्यास' राधिका-रवन-कृपा बिनु, कहूँ न सहज सनेहू॥

[१४५]   राग सारंग

दुख-सागर कौ बार न पार।
जुग-जुग जीव थाह नहिं पावत, बूढ़त सिर धर भार॥
तृष्ना तरल बयारि झकोरति, लोभ-लहरि न उतार।
काम-क्रोध भर मीन-मगर उर, नाहिंन कहूँ उबार॥

श्रीगुरु-चरन नाम नौका नहिं, हरि-करिया न बिचार ।।
'व्यास' भक्ति बिनु आस जाइ नहिं, सत संगति करि बार ।।

[१४६] राग सारंग

जो दुख होत बिमुख घर आवैं ।
ज्यौं कारौ लागै कारी निसि, कोटिक बीछू खायैं ।।
दुपहर जेठ परत बारू में, घायनि लौंन लगायैं ।
काँटिन माँझ फिरत बिनु पनहीं, मूँड में ढोला खायैं ।।
टूटत चाबुक कोटि पीठ पर, तरुवा बाँधि उठायैं ।
जो दुख होत अगिन में ठाढ़ें सर्वसु जुबा हरायैं ।।
ज्यौं बाँझहिं दुख होत, सौत कौ सुन्दर बेटा जायैं ।।
देखत ही सुख होत जितौ दुख, बिसरत नहिं बिसरायैं ।।
भटकत फिरत निलज बरजत ही, कूकर ज्यौं झहरायैं ।
गारी देत बिलग नहिं मानत, फूलत दमरी पायैं ।।
अति दुख दुष्ट जगत में जेते, नैंकु न मेरे भायैं ।
वाके दरसन परस मिलत ही[1] कहत 'व्यास' यौं नायैं ।।

[१४७] राग सारंग

जो पै हरि की भक्ति न साजी ।
जीवत हू ते मृतक भये अपराधी, जननी लाजी ।।
जोग, जज्ञ, तीरथ, ब्रत, जप, तप सब स्वारथ की बाजी ।
पीड़ित घर-घर भटकत डोलत पंडित मुंडित काजी ।।
पुत्र-कलत्र सजन की देही, गीध-स्वान की खाजी ।
बीत गये तीनों पन कपटी, तऊ न तृष्ना भाजी ।।
'व्यास' निरास भयौ जाही तें कृष्न-चरन रति राजी ।।

भक्त प्रशंसा— [१४८] राग सारंग

साधु सरसीरुह कौ सौ फूल ।
निर्मल सीतल जल हितकारी, काहू कों न बिकूल ।।

पाठान्तर—१ वाके दरसन परस मिलत ही, वाके दरसन परस मिलतनहि
दरश परस नहि दीजौ वाकौ, दरस परस नहि दीजौ वाकौ ।

तिनके बचन पान करि, डारत काम-जटा निर्मूल ।
जिनकी संगति भक्ति देत, हरि हरत सकल भ्रम-मूल ।।
तिनके 'व्यास' दास जो हूजै; तौ न रहै भव-सूल ।।

[१४६]　　　　राग धनाश्री

सुनियत कबहुँ न भक्त दुखारौ ।
पुजये स्याम काम बिनु दामनि, है निष्काम सुखारौ ।।
कृष्न कह्यौ रुक्मनि सों निह्किंचन-जन मोहिं पियारौ ।।
ताकौ मुख कबहूँ नहिं देखौं, जाकें धन कौ गारौ ।।
बन बसि पांडुसुतनि नहिं माँग्यौ, लग्यौ न राज लुभारौ ।
पाँच बरष के ध्रुव घर छांड़्यौ, मो लगि तजि आहारौ ।।
कोटि जातना सहि प्रह्लाद, बिषाद न आनत बारौ ।
पट-लूटत द्रोपती न मटकी, करी न अनत पुकारौ ।।
जरत गर्भ बैराट सुता महँ, मोहिं मन दियौ सवारौ ।
सरनागति आरति गजपति कौ; मो बिनु को रखवारौ ।।
ब्रज लगि मैं विष अग्नि-पान कियौ, बिषधर कीनौ न्यारौ ।
महाप्रलय के मोह नेह लगि, गोबर्धन लग्यौ न भारौ ।।
भक्तनि कें अवतर्‌यौ भक्ति लगि, भूखौ रह्यौ उघारौ ।
असुरनि सों जूझे भक्तन लगि, भयौ जु पसु चरि चारौ ।।
तन, मन; जोवन, जीव, जीविका, सर्वस भक्त हमारौ ।
'व्यासदास' की बिनती कोऊ भक्त न मोहिं बिसारौ ।।

[१५०]　　　　राग धनाश्री

सुने न देखे भक्त भिखारी ।
तिनकें दाम काम को लोभ न, जिनकें कुंजबिहारी ।।
सुक-नारद अरु सिव-सनकादिक, ये अनुरागी भारी ।
तिनको मनु भागवत न समुझै, सब की बुधि पचिहारी ।
रसना, इन्द्री दोऊ बैरिन, जिनकी अनी अन्यारी ।
करि आहार-विहार परस्पर, बैर करत बिभिचारी ।।

बिषयनि की परतीति न हरि कों, रीति कहत बाजारी।
'व्यास' आस-सागर में बूड़ें, सो कै भक्ति बिसारी॥

[१५१] राग धनाश्री

सदा हरि, भक्तनि कैं आनन्द।
गावत महाप्रसादैं, पावत सुख-सन्तोष अमन्द॥
जिनकौ सुख निरखत सुख उपजत, दूर होत दुख-दन्द।
अहंकार, ममता, मद छूटत, भूतनि कौ सौ छन्द॥
श्रीराधावल्लभ के पद-पंकज, सकल संपदा-कंद।
सेवत रसिकन के भ्रम छूटत, लोक-बेद के फंद॥
मुक्त भयैं अजहूँ गावत सुक, नारद, सनक, संनद।
'व्यास' बिराजमान सर्बोपरि, जय वृन्दावनचंद॥

[१५२] राग धनाश्री

निरखि हरिदासनि नैन सिरात।
स्याम हृदै में जब ही आवत, मिलत गात सों गात॥
स्रवन होत सुख भवन दवन दुख, सुनत छबीली बात।
दूरि होत त्रैताप-पाप सब, मुख चरनोदक जात॥
बाढ़ति अति रस-रीति प्रीत सों, सन्त प्रसादै खात।
गदगद स्वर पुलकित जस गावत, नैननि नीर चुचात॥
तिनके मुख मसि घसि लपटाऊँ, तिनहिं न सन्त सुहात।
'व्यास' अनन्य भक्ति बिनु जुग-जुग, बहुत गये पछितात॥

[१५३] राग सारंग

जो सुख होत भक्त घर आयें।
सो सुख होत नहीं बहु संपति, बाँझहि बेटा जायें॥
जो सुख भक्तन कौ चरनोदक पीवत, गात लगायें।
सो सुख सपनै हू नहिं पैयत, कोटिक तीरथ न्हायें॥
जो सुख भक्तन को मुख देखत उपजत, दुख बिसरायें।
सो सुख होत न कामिहिं कबहूँ, कामिनि उर लपटायें॥

जो सुख होत भक्त-बचननि सुनि, नैनन नीर बहायें।
सो सुख कबहुँ न पंयत पितुघर, पूत कौ पूत खिलायें॥
जो सुख होत मिलत साधन कैं, छिन-छिन रङ्ग बढ़ायें।
सो सुख होत न रंक 'व्यास' कों लंक सुमेरहिं पायें॥

[१५४] राग सारंग

जूठन जे न भक्त की खात।
तिनके मुख सूकर-कूकर के, अभखि-भखि पोषत गात॥
जिनके बदन सदन नर्कन के, जे हरि जननि घिनात।
काम-बिबस कामिनि के पीवत अधरन लार चुचात॥
भोजन पर माँखी मूतति हैं, ताहू रुचि सों खात।
भक्तन कों चरनोदक अँचवत, अभिमानी जरि जात॥
स्वपच भक्त कौ भोग ग्रहत हरि, बाँभन ताहि डरात।
बाजदार की पाँति ब्याह में, जैंवत बिप्र बरात॥
भेंटत सुतहिं रेंट मुख लागत, सुख पावत जड़ तात।
अपरस ह्वै भक्तन छ्वै छुतिहा, तेल सचेलै न्हात॥
हरि - भक्तनि पाछैं आछैं डोलत, हरि गङ्गा अकुलात।
साधु-चरन-रज माँझ 'व्यास' से कोटिक पतित समात॥

[१५५] राग धनाश्री

भव तरिवे कों भक्ति उपाउ।
साधु सङ्ग करि हरिहिं भजौ रे, देहु सवारौ दाउ॥
परहरि निंदा, पर-दारा तजि, भजियै हरिराउ।
सब गुन जैहैं लोभ करत ही, स्याम न करत सदाउ॥
काचे घट के जल ज्यों छिनु-छिनु, घटति जात है आउ।
बिषयनि की सङ्गति बूड़हुगे, देह जाँजरी नाउ॥
हरि कौ नाम धाम सर्वस सुख, जानि कृष्ण-गुन गाउ।
'व्यास' बचन बिसरावत ही, जम - द्वारौ जाइ बसाउ॥

[१५६] राग धनाश्री

भावत हरि प्यारे के प्यारे।
जिनके दरस परस हरि पाये, उघरे भाग हमारे ॥
दूरि भये दुख - दोष, हृदय के कपट - कपाट उघारे।
भव सागर बूड़त हमसे अपराधी बहुत उबारे ॥
भूत - पितर, देई - देवा सों झगरे सकल निवारे।
सुख मुख बचन रचन कहि कोटिक बिगरे 'व्यास' सुधारे ॥

[१५७] राग गौरी

साँचे मन्दिर हरि के सन्त।
जिन मन मोहन सदा बिराजत, तिनहिं न छाँड़त अन्त ॥
जिनि महँ रुचि करि भोग भोगवत, पाँचौ स्वाद बदन्त।
जिन महँ बोलत हँसत कृपा करि, चितवन नैन सुपन्त ॥
अपनै मत भागवत सुनावत, रति दै रस बरषन्त।
जिनमें बसि सन्देह दूरि करि, देह धर्म परजन्त ॥
जहाँ न सन्त तहाँ न भागवत, भक्त सुसील अनन्त।
जहाँ न 'व्यास' तहाँ न रास-रस, बृन्दावन कौ मन्त ॥

[१५८] राग गौरी

पहिले भक्तन के मन निर्मल।
जिनके दरस पतित पावन भये, जीव परसत गंगाजल ॥
जिनके हिय तें हरि न टरत कबहूँ एकौ पल।
तिनकौ नाम लेत गुन गावत रति बाढ़ै सद सेयै चरन-तल ॥
तिनकें सुरति - रति बाढ़ै सदा जुगल छूटत न कहूँ छल।
जिनकें मद-अभिमान न मत्सर, जिनके बेगि पंथ चल।
जिन्हें सेइ बृन्दावन पायौ, 'व्यास' सुकल जनम-फल ॥

[१५९] राग गौरी

बेद भागवत स्याम बतायौ।
गुरु बचननि परतीति बड़ाई, साधन सब सन्देह भगायौ ॥

त्रिभुवन में भुवि जा लगि जनये, निजु बपु छीन छुड़ायौ।
साधु संग कीनी बंसी बस, निश्चै करि मन भायौ॥
जहाँ भक्त सब जात, तहाँ तें अजहूँ कोऊ न आयौ।
'व्यास' हिं बिदा करौ करुना करि, समाचार लैं आयौ॥

उपदेश— [१६०] राग नट

सुख में हरि बिसरावै कैसें, दुख में हरि कहि आवै।
दुख सुख परें जु हरिहिं न छांड़ै, ताहि न हरि बिसरावै॥
दुख-सुख जो लगि, भक्ति न तौ लगि, यह भागवत बतावै।
दुख-सुख झूंठौ, संतत साँचौ हरि, हरि-जन मुँहि भावै॥
सुख-दुख छूटैं सुक, सनकादिक, नारद हरि-गुन गावै।
बिधि-निषेध, गुन-दोष, सुक्ख-दुख, बिषयिनि बाँधि नचावै॥
सुख-दुख गयें जु सुख उपजत है, तापै स्याम बँधावै।
हरिबंसी हरिदासी सेवत, 'व्यास' तहाँ बन पावै॥

[१६१] राग गौरी

हरि की भक्ति बिनु तन-मन मैलौ।
जैसें बिनु लाद्यौ बिनु जोत्यौ,गायनि-मांझ फिरत खल खैलौ॥
आपु न जानत, कही न मानत, अजहूँ गुरुहिन करत असैलौ।
आपुन बिगरि बिगारत-औरनि, ज्यों जल-नायैं काचौ घैलौ॥
जुग-जुग जनम-जनम जाही तें, अजहुँ न भरचौ बिषै कौ थैलौ।
'व्यास' बचन मानें बिनु जानैं, नरक परैगौ बैले पैलौ॥

[१६२] राग गौरी

तन छूटत ही धर्म न छूटै।
जीवत मरैं न माया छूटै, काल करम मुंह कूटै॥
पुत्र, कलत्र, सजन सुख देवा, पितर, भूत सब लूटै।
कबहुँ रंक राजा कबहूँ है, बिषय-बिकार न छूटै॥
साधु न सूझै, गुन नहिं बूझै, हरि-जस-रस नहिं घूंटै।
'व्यास' आस घर घालै जग कौ, दुखसागर नहिं फूटै॥

[१६३] राग सारंग

हरि बिनु सब शोभा शोभा सी ।
अंजन मंजन पति बिनु सीठौ, ज्यों मटकै मसवासी ।।
अँधरहिं काजर, नकटिहिं बेसरि, टौंटिहिं पहुँची हासी ।
होज पुरुष, त्रिया बाँझ वृथा, मुंडली लटकन मति नासी ।।
कुढ़ियहिं मुदरी, बूचहिं कुण्डल; केस बिना आकासी ।
दासी लीन कुलीन कामिनी; कंचन तन संन्यासी ।।
स्यारहिं राज नरहिं में सोहै, जैसें राज बिसासी[1] ।
'व्यास' स्याम बिनु सब असमंजस, जैसें धनिक बिनासी ।।

[१६४] राग सारंग

हरि बिनु को अपनौ संसार ।
माया-मोह बँध्यौ जग बूड़त, काल नदी की धार ।।
जैसें संघट होत नाउ में, रहत न पैले पार ।
सुत - सम्पति-दारा सों ऐसैं, बिछुरत लगै न वार ।।
जैसैं सपनैं रंक पाइ निधि, औंड़े धरि भण्डार ।
ऐसैं छिन-भंगुर देही कों, गरबतु कहा गँवार ।।
जैसैं अन्ध आँधरे टेकत, गनत न खार पनार ।
ऐसैं 'व्यास' बहुत उपदेसे, सुनि-सुनि गये न पार ।।

[१६५] राग धनाश्री

भक्ति बिनु मानुष-तन खोवै, क्यों सोवै, उठि जागु रे ।
बिषय-अग्नि परि भागि उबरियै, साधुनि सों कीजै अनुरागु रे ।।
देह, गेह, दारा, सुख, सम्पति, ज्यों कोकिल सुत कागु रे ।
लाज-बड़ाई, गुन-चतुराई, जैसैं फोकट[2] फागु रे ।।
माया-मोह जियत नहिं छूटैं, जैसैं दुमुहाँ नागु रे ।
लोक-बड़ाई कौ सुख झूंठौ, बाजीगर सौ बागु रे ।।

पाठान्तर १. बिसासी. बिनासी. बिलासी ।
२. फोकट, फोटक ।

हरि बिनु क्यों तरिहै दुखसागर,ज्यौं धन निधन सुहागु रे।
आयु घटत जानत नहिं, जैसैं नदी-तीर बड़ बागु रे ।।
जैसैं मृग अपनौ हित जानत, सुनत बधिक कौ रागु रे।
ऐसैं 'व्यास' बचन बिनु मानैं, मिटै न मन कौ दागु रे ।।

[१६६] राग धनाश्री

भगति बिनु अगति जाहुगे बीर ।
बेगि चितै हरि-चरन-सरन रहि, छाँड़ि बिषै की भीर ।।
कामिनि-कनक देखि जिनि भूलहु, मन में धरियहु धीर ।
साधुन की सेवा करि लीजै, जौ लगि जियत शरीर ।।
मानुष तन बोहित, गुरु करिया, हरि अनुकूल समीर ।
डरियहु आतमघात तें, तरियहु काल-नदी गम्भीर ।।
सैंन, धना, नामा, पीपा, रैदास, भक्ति लै गये कबीर ।
ताकें 'व्यास' स्याम उर आवत, जाही कें है पर-पीर ।।

[१६७] राग सारंग (जयति ताल)

भक्ति बिन टेसू कौ सौ राज ।
कारागृह दारा हय गय, रहत न गाँव समाज ।।
सूकर, कूकर, बधिक, सूकरी, हमैं सु नरक कौ साज ।
जैसे राँकहिं सुख न होत, पावत सब पसु बस नाज[1] ।।
ऐसे कोटि पुरुष पर मिटत न, एक जुवति की खाज ।
झटपट है जग बकहिं रात दिन, काल चहूँ दिस बाज ।।
अपने सरन राखिहै 'व्यास'हिं, हरि सबके सिरताज ।।

[१६८] राग सारंग (जयति ताल)

भक्ति बिन केहि अपमान सह्यौं ।
कहा-कहा न असाधुनि कीनौं, हरि-बल धर्म रह्यौ ।।
अधम राज - मद माते लै; सिविका जड़भरत नह्यौं ।
निगड़ सहे बसुदेव देवकी, सुत पटकत दुःसह सह्यौ ।।

पाठान्तर १. सब पसु बस नाज, सब सुव नाज ।

हरि-ममता प्रहलाद बिषाद न जान्यौ, दुख सहदेव दह्यौ ।
पट लूटत द्रोपदि नहिं मटकी, हरि कौ सरन चह्यौ ॥
मत्त सभा कौरवनि बिदुर सों, कहा - कहा न कह्यौ ।
सरनागत आरत गजपति कों, आपुन चक्र गह्यौ ॥
हा, हरि, नाथ ! पुकारत आरत, और कौन निवह्यौ ।
'व्यास' बचन सुन मधुकरसाह, भक्ति-फल सदा लह्यौ ॥

[१६९] राग सारंग (जयति ताल)

काहै भजन करत सकुचात ?
पर-धन, पर-दारा-तन चितवत, तब कहि क्यों न लजात ॥
मिथ्या बाद-बिवाद बकन कों, फूल्यौ फिरत कुजात ।
फूटचौ कर्म, भर्म हिय बाढ़चौ, तजि अमृत विष खात ॥
डहक्यौ आइ पाइ भल अवसर, भक्ति बिमुख भयौ गात ।
सहज सिराय गई माया में, बहुत गये पछतात ॥
पाछै गई सु जान दै रे, अब सुन लै यह बात ।
हरि गुन गाय नाँच निर्भय ह्वै, 'व्यास' लखी यह घात ॥

[१७०] राग सारंग (जयति ताल)

कहत सुनत बहुत दिन बीते भक्ति न मन में आई ।
स्याम-कृपा बिनु, साधु-सङ्ग बिनु, कहि कौनैं रति पाई ॥
अपनैं-अपनैं मत मद भूले, करत आपनी भाई ।
कह्यौ हमारौ बहुत करत हैं, बहुतनि में प्रभुताई ॥
मैं समुझी सब, काहू न समझी, मैं सबहिन समुझाई ।
भोरे भक्त हुते सब तब के, हम तौ बहु चतुराई ॥
हमहीं अति परिपक्व भये, औरनि कें सबै कचाई ।
कहनि सुहेली, रहनि दुहेली, बातनि बहुत बड़ाई ॥
हरि-मन्दिर माला धरि, गुरु करि, जीवनि के दुखदाई ।
दया, दीनता, दास-भाव बिनु, मिलै न 'व्यास' कन्हाई ॥

[१७१]   राग सारंग

कलिजुग मन दीजै हरि-नामैं ।
आराधन - साधन धन - कारन, कत कीजै बेकामैं ॥
साधुनि के गुन जाहि न लागैं, दोष बिरानैं तामैं ।
सेवा मन्दिर भक्ति भागवत, अब न होत बिनु दामैं ॥
हरि साधुनि बिनु कछू न भावै, ऐसे गुन हैं कामैं ।
जाहि भलौ सबही कौ भावै, 'व्यास' भक्ति है तामैं ॥

[१४७]   राग सारंग व धनाश्री

कलिजुग स्याम-नाम आधार ।
हरि के चरन-सरन बिनु, काल-व्याल पै कहूँ न उवार ॥
देवी - देवा पूजा करि - करि, धार बहै संसार ।
स्वान पूंछ गहि भव - सागर कौं, क्यों पावहुगे पार ॥
छूट्यौ अपनौ धर्म सबनि पै, ज्ञान बिबेक बिचार ।
एक लोभ के आगैं, सकल गुननि कौ पर्‌यौ बिडार ॥
ब्राह्मन करत सूद्र की सेवा, तजि विद्या - आचार ।
रज छाँड़ो रजपूत, कपूतन लाज नहीं संसार ॥
बनिक - बनिक में मेलि जौहरी, जोरत कपट भँडार ।
कुल की नारि गारि दै भर्तहिं, ज्यौं रति गाइबि जार[1] ॥
और सबै असमंजस हरि बिनु, नाहिंन कहूँ उबार ।
'व्यास' वचन माने बिनु, जुग - जुग सेवहुगे जमद्वार ॥

[१४८]   राग सारंग व धनाश्री

तौ लगि रवनी लगत रवानी ।
जब लगि मोहन-मुख-छबि बारक, उर अन्तर नहिं आनी ॥
तौ लगि स्रवननि सुनत सुहाइ, न और पुरान-कहानी ।
जौ लगि साधुनि पर बारक हू, सुनी न सुक-मुख-बानी ॥

पाठान्तर १. गाइबिजार, गाय बिजार ।

तब लगि जोग, जज्ञ, व्रत, तीरथ, भावत पावक पानी ।
जब लगि गुरु-उपदेश न जान्यौ, प्रेम-भक्ति हू बानी ।
जब लगि 'व्यास' निरास दास ह्वै, भजी नहीं रजधानी ॥

[१७४] राग सारंग व विलावल

सपनौ सौ धन अपनौ स्याम ।
आदि अन्त तासौं न बिछुरिवौ, परत काल सौं काम ॥
तन, धन, सुत, दारा, काराग्रह, तजहु भजहु लै नाम ।
देखि - देखि फूलहु जिनि भूलहु, जग नट कौ सौ आम ॥
जैसें बछरा के धोखे सों, गैया चाटत चाम ।
ऐसें 'व्यास' आस सब झूठी, साँचौ हरि अभिराम ॥

[१७५] राग धनाश्री

साँचौई गोपाल-गोपाल रढ़िवौ ।
रूप-सोल-गुन कौन काम कौ, हरि की भक्ति बिनु पढ़िवौ ॥
जोग, जज्ञ, जप, तप, संजम, व्रत, कलई कौ सौ मढ़िवौ ।
नाम-कुठार बिना को काटै, पाप - वृन्द कौ बढ़िवौ ॥
जैसें अन्न बिना तुस कूटत, बारू में तेल न कढ़िवौ ।
ऐसैंहिं करम-धरम सब हरि बिन, बिन बैसांदर डढ़िवौ ॥
जैसें परदारा सों रति करि, पति बिन रासभ चढ़िवौ ।
ऐसें हिं 'व्यास' निरास भये बिन, कह बातनि कौ गढ़िवौ ॥

[१७६] राग गौरी व धनाश्री

वृन्दावन साँचौ धन भैया ।
कनक-कूट कोटिक लगि तजियै, भजियै कुंवर कन्हैया ॥
जहाँ श्री राधा - चरन रैंन की कमला लेत बलैया ।
तिनमें गोपी नाँचति - गावति, मोहन बैंणु बजैया ॥
कामधेनु कौ छीरसिंधु तजि, भजहु नन्द की गैया ।
चारचौ मुक्ति कहा लै करियै, जहाँ जसोदा मैया ॥

अद्भुत लीला, अद्भुत वैभव, साँचौ सुकदेव कहैया।
आरत 'व्यास' पुकारत बन में, थोरेई लोग सुनैया॥

[१७७] राग सारंग व धनाश्री

श्रीवृन्दावन अनन्यनि की गति।
अनत रहत दुख सहत सुखनि लगि,जाइ हठीले (हू) की पति॥
सुक बरजे सुकरत अभिमानी, बिषयिन सङ्ग गई मति।
कृष्ण-कृपा बिनु तृष्णा बाढ़ी, कनक - कामिनी सों रति॥
सीता राम सरीखे बिछुरे, माया बर्तमान अति।
अजहूँ माया मोह न छूटत, 'व्यास' मोच सिर गाजति॥

[१७८] राग सारंग व धनाश्री

जाके मन लोभ बसैं सो कहा हरि जानै।
स्याम - कृपा बिनु साधु - वचन नहिं मानै॥
साधुन सों बिमुख भूत - पितरन कों मानै।
गनिका कौ पूत पितहिं कैसें पहिचानै॥
इहि बिधि जगत जनम-जनम बहुतन के हाथ बिकानै।
'व्यास' स्याम-भक्ति बिनु को, को नहीं खिसानै॥

[१७९] राग नट

मनहिं नचावै विषय - वासना, क्यों हिरदै हरि आवै।
हौं असमर्थ अनाथ, मारयतु पांचनि, को समुझावै॥
सखा सङ्ग के अङ्ग करत नहिं, सखी न मोंहि बचावै।
लहुरौ भैया करि बिरोध, औरनि पै मोंहि हँसावै॥
बिन आगहिं घरु लगत जु लायौं, सो कोऊ न बुझावै,
भीतर भाजि दुरचो बाहिर कौ; भक्त न सोधौ पावै॥
तोरौ पानौं सुत - दारा हँसि बसत परौसी गावै।
एकै आस 'व्यास' नहिं समुझत, खात पीवत बहकावै॥

[१८०] राग धनाश्री

तृष्णा कृष्ण-कृपा बिनु सबकैं।
जती सती कौ धीरज न रहै, माया - लोभ बाघ के बबकैं॥

जग घोराहि काम दौरावत, मारत आसा चाबुक ठबकें।
गह्यौ आसरौ बृन्दावन कौ, काटर[1] 'व्यास' भयौ है अबकें॥

[१८१] राग कान्हरौ

श्रीकृष्ण-सरन रहें तृष्णा जैहै।
भजि गोपाल कृपालहिं निसिदिन,काल-व्याल कबहूँ नहिं खैहै॥
साधु - सिंह को जो सङ्गति रहै, तौ न निकट माया मृग रैहै।
'व्यास' भक्ति बिनु गति नहिं लहियै,जमके द्वार नरक दुख सैहै॥

[१८२] राग धनाश्री

जैसें प्यारे लागत दाम।
ऐसें रसिक अनन्यन लागत, प्यारे स्यामा - स्याम॥
काया-जाया सों रति बाढ़ी, कौन कहै निहकाम ?
राग-तान-तालहिं मन दीनौं, लेइ न हरि-गुन-ग्राम॥
पाप हरन, सुचि-करन 'व्यास', पतितन कों है हरि-नाम॥

[१८३] राग सारंग

नियन्ता पतितन कौ हरि-नाम।
उचरत ही मुंह कुचरत कलि कौ, खोज न राखत स्याम॥
चोर मध्य या मित्र, ब्रह्म, गुरु, दारा, सुत आराम।
अधवन्तन हरि बोलत हीं, भगवन्त दियौ निज-धाम॥
कौन अजामिल हू तें पापी, जाकों जम हँसि कियौ प्रणाम।
हरि-पद-पंकज-छत्र-छाँह बिनु, मिटै न दुख-रवि-घाम।
ब्रजवासी 'व्यास' बबूर किये हरि, और भक्त कुल आम॥

[१८४] राग कान्हरौ

पतित पवित्र किये हरि-नागर।
एक नाम के लेत सबनि के, सूखि गये अघ-सागर॥
अधम अजामिल हू कों उधरी, मुक्ति-पौर की आगर।
हरि-हरि कहत कौन पापी के, पाप लिखे जम-कागर॥

जैसें राजनीति की सङ्का, चोरन होत अचागर।
गौरस्याम कौ सरन तक्यौ जिनि, तिनको कौन बराबर ॥
ऐसें 'व्यास' अनन्य सभा में और न होत उजागर ॥

[१८५]　　　　　　　　　　　　　　　　राग कान्हरौ

हरि कहि लेहु कछू नहिं रैहै।
सपनौ सौ जोवन धन अपनौ, सुत सम्पत दारा घर जैहै ॥
कोटिक करम धरम कौ करता, एक भक्ति बिनु गति नहिं पैहै।
सन्तत सिंह सरन रहि को अब, कोटि स्वान परि धौ कहा लैहै ॥
कुल कन्या भरतारहिं तजि, गनिका कैसें पतिहिं रिझैहै।
कदल निकट वारि कर, को जड़ अण्ड बबूर धतूरे बैहै ॥
हीरा हेम निगड़ दुखदाता, चन्दन फूल भार को सैहै।
प्यासे परत सुधासिंधु हित; कौन अन्ध बिष घोरि अचैहै ॥
सुरसरि परिहरि कौन पातकी, पावन छोड़ सुर जल न्हैहै।
'व्यास' उपासक हरि कौ ह्वै, को देव पितर भूतन कर गैहै ॥

[१८६]　　　　　　　　　　　　　　　　राग कान्हरौ

हरि के नाम के भरोसें रहियै।
साधन बिधि ब्यौपार न कलिजुग, निशदिन हरि हरि कहियै ॥
अपनें धरम बिमुख नर; हरि भजन बिना भवसिंधु न तरियै।
और न कछू उपाव, भाव करि, सन्त चरन रज गहियै ॥
माया काल तं गुन सब झूंठे, दुख सुख बिधि सब सहियै।
'ब्यास' निरास भयौ, हरि के बल साँचौ सुख तब लहियै ॥

[१८७]　　　　　　　　　　　　　　　　राग कान्हरौ

गाइ लेहु गोपालहिं, यह कलिकाल वृथा न बितीजै।
बिछुरत हू न जानि है, तन मन धनहिं न भूलि पतीजै ॥
दामिन कैसो चमक मीचु की, कामिनि त्यौं न चितीजै।
करता हरता परमेसुर, बिनु काजहिं कत पछतीजै ॥

भोग करत दुख-रोग बढ़त, हरि - नाम प्रसाद हितीजै ।
'व्यास' स्याम के दास कहावत, कपट भण्डार रितीजै ॥

[१८८] राग कान्हरौ

हरि-गुन गावत कलिजुग रहियै ।
बिधि-ब्यौहार रह्यौ न कछू अब, साधु-चरन निजु गहियै ॥
इहिं संसार-समुद बोहित उठि, हरि-हरि कहत निबहियै ।
'व्यास' स्याम की आस करहु, उपहास सबनि की सहियै ॥

[१८९] राग कान्हरौ

मन मेरे तजियै राजा-संगति ।
स्यामहिं भुलवत दाम - काम बस, इनि बातनि जैहै पति ॥
बिषयनि के उर क्यों आवत हरि, पोच भई तेरी मति ।
सुख कहँ साधन करत अभागे, निसि-दिन दुख पावत अति ॥
'व्यास' निरास भये बिनु; भगति बिना न कहूँ गति ॥

[१९०] राग कान्हरौ

जाकैं हरि धनु नाहिंन माल ।
जो गरीब गरवत काहे कों, बादि बजावत गाल ॥
है कपूत बंस-कुल-बोरा, काँचु रच्यौ ज्यों लाल ।
तासों धनिक कह्यौ जिनि कोऊ, है कोरौ कंगाल ॥
तरपट परै जानियै तब ही, कण्ठ गहै जम - जाल ।
'व्यासदास' सपने की सम्पति, को गहि भयौ निहाल ॥

[१९१] राग कान्हरौ

सबै करत पद की रति, कहा हम थोरे हरिहिं रिझावत ।
राग-रागिनी तान-मान महिं, लालन लगत आवत ॥
कछू जुगति ना मो कहँ उपजत, उन में मोहन गावत ।
सवा लाख कीनैं तिलोचन हरि कों, को दरसन पावत ॥
भाव बिना न भक्ति - रस उपजे, यह सब सन्त बतावत ।
कियैं उपाय राधिका, मोहन 'व्यास'हिं निकट न आवत ॥

पाठान्तर—१. बिद्याबानि. बिद्यमान ।

[१६२] राग नट

कहत सब लोभहिं लागौ पाप ।
तऊ न छूटत लोभ होत हू, बाढ़्यौ उर परिताप ।
जैसें पंकहिं पंक न छूटहिं, सूखि सरीरहिं आप ।
ऐसें जोग, जज्ञ, तीरथ, ब्रत, मन कौ मिटै न ताप ॥
विद्यावानि[1] कृष्ण जादव कौं, मुनि नें दीनौ कोपि सराप ।
'व्यास' भक्ति बिनु दुर्लभ लोकनि तजत शोक अगधाप ॥

[१६३] राग कान्हरौ

लोक चतुर्दस लोभ फिरायौ । कबहुँक राजा रंक सुहायौ ॥
कबहुँक बाँभन सुपच कहायौ । 'व्यास'बचन सुनि साधुन पायौ ॥

[१६३] राग सारंग

जाके मन बसै काम-कामिनि - धन ।
ताकैं सपनैं हू न सम्भवै, आनँद-कन्द स्याम-घन ॥
भक्ति, भागवत भनत तहाँ नहिं, जहाँ बिषय आचरन ।
दया, दीनता, करुणा तहाँ, जहाँ नहिं जीव - आहरन ॥
बिमद बिमत्सर संत जहाँ हैं, भगवत - लीला - सरन ।
'ब्यास' आस की पास बँधे, ते बूड़े ग्रह आचरन ॥

[१६५] राग विलावल

निष्काम ह्वै स्याम जो गावहु ।
साँचे-साँचे साधुनि में तुम, साँचे साधु कहावहु ॥
बिनु लीनें जो नाँचहु, तौ तुम प्रेम - भक्ति-फल पावहु ।
दाम-काम ना हरि-नाम कौ गुन लगै न कोटि रिझावहु ॥
इन्द्रीजित ह्वै अजितहिं मन दै, तन धन सुख बिसरावहु ।
बिमुखन के द्वारैं उझकत हौ, मुख जिति हरिहिं दिखावहु ॥
अगनित दोष रोष तृष्णा महँ, कृष्णहिं कहा लजावहु ।
आसा-बन्धन तें नँदनन्दन; 'ब्यास'हिं बेगि छुड़ावहु ॥

पाठान्तर—१. काटरं, कट्टर ।

[१६६] राग सारंग

सो न मिल्यौ जो कबहुँ न बिछुरै ।
हरि कौ साथ सु ओर निबाहूँ, जो मन माँझ फुरै ॥
जैसैं पथरहिं भिदत न पानी, परसत फटक घुरै ।
ऐसैं जड़ सचेत के चितसों, सांचौ हित न जुरै ॥
अनी, आगि में परत धनी लगि सूर सती न मुरै ।
गिरवर तरवर सिंधु भेद कैं, फिरि न नदी बहुरै ॥
ठग, बग, डिंभी लोगनि की गत, आदि - अन्त न दुरै ।
दया, दीनता, दास - भाव बिनु 'व्यास' न स्याम ढुरै ॥

[१९७] राग सारंग

दुबिधा तब जैहै या मन की ।
निर्भय ह्वै कैं जब सेवहुगे, रज श्री वृन्दावन की ॥
कामरि लै, करुवा जब लैहै, शीतल छाँह कुञ्जन की ।
अति उदार लीला गावहुगे, मोहन - स्याम सुघन की ॥
इन पाँइनि परिकरमा दैहैं, मथुरा - गोबर्धन की ।
'व्यास' आस जब टेक पकरिहैं, ऐसैं पावन पन की ॥

[१६८] राग सारंग

सबै सुख,बिमुखनि कों दुख-रूप ।
जहाँ न रसिक अनन्य सेईयतु वृन्दावन के भूप ॥
जहाँ न जीव-दया, न दीनता-भाव, न भक्ति अनूप ।
कनक-कूट कोटिक लगि तजि, भज हरि-मन्दिर जु अनूप ॥
'व्यास' बचन सुनि राज परीछत बिसराये गृह-कूप ॥

[१६६] राग सारंग

हरि-बिमुखन कों दारुन दुख पायौ ।
निसि-दिन बिषै-भोग की चिंता, अंतकाल दिन आयौ ॥
औंड़ी नींव खुदाइ दाम दै, ऊँचौ घर करवायौ ।
'व्यास' वृथा ऐसे साधन करि, जनम-जनम डहकायौ ॥

[२००] राग सारंग

बिमुखनि रुचित न कुञ्जन बसिवौ ।
जिनमें राधा-मोहन बिहरत, देखि सुखद मुख हँसिवौ ॥
निसि-दिन-छिन छूटत नहिं कामिनि, चरनन सों सिर घसिवौ ।
चुम्बक मन - आनन्द बिकाने, रह कुल व्याकुल गसिवौ ॥
अंग अंग रसरंग रचे, सुख सचे, कुसुम कच खसिवौ ।
'व्यास' स्वामिनी की छबि, पिय संग जमुना-जल में धसिवौ ।

[२०१] राग सारंग

बहिनी-बेटा, हरि कों न तजियै ।
जा सँगति तें पति - गति नासै, ता संगति तें लजियै ॥
माता,पिता,भैया भामिनि, कुल, सखी, सखा नहिं भजियै ।
साधुनि के पथ चलियै, ऊबट चलै सु बेगि बरजियै ॥
गुरुहिं न आवै गारि बातन की, सो सामग्री सजियै ।
'व्यास' बिमुख ब्राह्मन परिहरियै,सुपच भक्त की कूखि उपजियै ॥

[२०२] राग सारंग

जौ पै कोऊ साँची प्रीति करि जानैं ।
तौ या बन में राधा-रमनैं, मन लगाइ गहि आनैं ॥
सुनियत कथा स्याम जू की एकै, प्रीति के हाथ बिकानैं ।
ता मोहन की महिमा कैसैं, बिषई 'व्यास' बखानैं ॥

[२०३] राग सारंग

साँची प्रीति हरति उपहासहिं ।
कपट-प्रीति-रंग राचि परस्पर, जब-कब होहि बिनासहिं ॥
मुंह - मीठी बातनि मन मोहत, हरत पराई आसहिं ।
दावानलहिं न ओस[1] बुझावत, कुहुर न हरत डुकासहिं[2] ॥
पीर पराई धीर हरत कछु, कहत न आप व्यथा सहिं ।
घर के सुत ज्यों जिय कायर,कोकिल चित चोरत कल वासहिं ।
ऐसे कपटिन की संगति तजि, 'व्यास' भजहु हरि-दासहिं ॥

पाठान्तर—१. ओस, बोस । २. डुकासहिं, दुकासहि, ढुकासहिं ।

[२०४] राग धनाश्री

साँची प्रीति के हरि गाहक।
जान राइ सब ही हरि जानत, परत प्रेम कौ लाहक॥
कपट निकट न रहै नट-नागर, दीननि के दुख दाहक।
'व्यास' न कोऊ और सहाइक, भक्ति-भार कौ वाहक॥

[२०५] राग सारंग

हरि सों कीजै प्रीति निवाहि।
कपट कियें नागर-नट जानत, सबके मन की डाहि॥
मैं फिरि देख्यौ लोक-चतुर्दस, नीरस घर-घर आहि।
अपनै-अपनै स्वारथ के सब, मन दीजै अब काहि॥
भक्ति-प्रताप न जानत बिषई, भव-सागर अवगाहि।
जार-जुवति-गनिका कौ बेटा, पहिचानैं न पिताहि[1]॥
जैसें प्यासौ मृग धावत, नहिं पावत मृग-तृष्नाहि।
ऐसें तन, धन, सुत, दारा सब झूंठे, मधुकरसाहि॥

[२०६] राग सारंग

प्रीति कपट की जब-तब टूटै।
चोढ़ गाय ज्यौं हुँकरि बखेरुहि, थन लागत मुख कूटै॥
कबहुँक वचन बोल मीठे से, तमकि तुषक सी फूटै।
पाखण्डिन की संगति खोटी, ज्यों ठग मिलि सब[2] लूटै॥
कृपावन्त भगवन्त होंहि तब, दारुन दुख तें छूटै।
साधु-संग तें 'व्यास' परम सुख, भक्ति-रतन कहा खूटै॥

[२०७] राग रामकली

वादि सुख[3]-स्वाद, बेकाज पण्डित पढ़त।
स्याम-जस, भक्ति-रस, कहै नहिं भागवत,
हक नाहक कहा कनक-कामिनि विषै निसिदिन रढ़त॥

पाठान्तर— १. पहिचानै न पिताहि, पहिचानै पतिताह, पहिचानै पतिताहि।
२. सब, संग। ३. सुख, मुख।

करत साधन सकल, धन - मान छित धरि,
कटक भटकत मृषा बचन - रचना गढ़त।
अस्व - गज हेत नृपति नर ठगत, रातनि–
जगत, नैंक आदर जान गर्व - पर्वत चढ़त ॥
हरिदास निंद करि, पित्र-भूत बन्दि उर,
कृष्ण - गोपाल शुभ नाम नहिं मुख रढ़त।
'व्यास' मन त्रास नहिं करत जमदूत कौ,
जातना[1] कठिन सहि लेत पावत डढ़त ॥

[१०८]　　　　　　　　राग सारंग

पढ़त-पढ़ावत जो मन मान्यौ।
कौन काम गोपाल भक्ति सों, जो पुरान पढ़ि जान्यौ ॥
घर घर भटकि, मटकि कामिनि लगि, गाल पटकि धन आन्यौ।
निसिदिन बिषै स्वाद रस लम्पट, तजि पाँचनि कौ कान्यौ ॥
सपनैं हूँ न किये हरि अपने, हित[2] हरिबंस बखान्यौ।
सुने न बचन साधु के मन दै, चरन पखारि न अँचयौ पान्यौ ॥
सारासार बिबेक न जान्यौ, मन सन्देह न भान्यौ।
दया, दीनता, दास भाव बिनु, 'व्यास' न हरि पहिचान्यौ ॥

[२०६]　　　　　　　　राग सारंग

हिय में आवत हरि न पढ़ैं।
अभिमानी क्यों दास होत, दीनन के कन्ध चढ़ैं ॥
भक्ति प्रीति तौ खोवत धन लगि, रोवत गुली डढ़ैं।
ठगत राजसिनि, डगत धर्म तें, फूलत दाम बढ़ैं ॥
जब तब पीतरि प्रगट होत, कलई सों कनक मढ़ैं।
'व्यास' कपट सों हरि न मिलत, ज्यों सरहिं रनहिं कढ़ैं ॥

पाठान्तर— १. जाचना, जाचिना, यातना।
२. हित, हिति, श्री, हित।

[२१०] राग सारंग

आपु न पढ़ि औरनि समुझावत। दोषहिं प्रगटत, गुनहिं दुरावत ।।
नीर मिलै सब छीर भिड़ात। सन्त-सभा सपनें नहिं आवत ।।
अपनें ही घर बड़े कहावत। औरनि ठगि आपुन ठगवावत ।।
गनिका के से भाव बनावत। हति विमुखनि पै सचु नहिं पावत ।।
इहिं बिधि जनम जनम डहकावत। 'व्यासहिं' अभिमानी नहिं भावत

[२११] राग सारंग

भक्ति न जनमैं पढ़ैं पढ़ायें।
कृष्ण-कृपा बिनु, साधु-संग बिनु, कह कुल गाल बजायें ।।
हरि सों ठेंन न सुबर मानहीं, पिटभरि रागहिं गायें।
हरिहिं रिझाइ सकै को नटवा, नट - भट पै नचवायें ।।
सपनें हू न मिलैं हरि लोभिनि, बाजे बिबिध सुनायें।
सुभटनि जूझत हरि न मिलैं अब, सती न पावक पायें ।।
दान किये भगवान न भेटैं, कोटिक तीरथ न्हायें।
नाऊ, जाट, चमार, जुलाहे, छींपा हरि दुलरायें ।।
मत्सर बाढ़्यौ भट्ट-गुसांइन, स्वामी 'व्यास' कहायें ।।

[२१२] राग सारंग

भई काहूँ कैं भक्ति पढ़ैं न।
धन कों पण्डित कहत भागवत, होत न हरि सों ठैंन ।।
उपज्यौ भाव कबीर धीर कों, बेद पुराण पढ़ैंन।
माँस छाँड़ि रैदास भक्त भये, कृपा - तुरंग चढ़ैंन ।।
बिषइनि तजें पिंगला सुघरी, करुणा राज बढ़ैंन।
'व्यास' प्रतीति बिना न कहूँ सुख, ज्यौं दुख उरग कढ़ैंन ।।

[२१३] राग सारंग

बाह्मन के मन भक्ति न आवै। भूलै आप, सबनि समुझावै ।।
औरनि ठगि-ठगि अपुन ठगावै। आपुन सोवै, सबनि जगावै ।।

वेद-पुराण बेचि धन ल्यावै। सत्या तजि हत्यार्हि मिलावै॥
हरि-हरिदास न देख्यौ भावै। भूत, पितर, देवता पुजावै॥
अपुन नरक परि कुलहिं बुलावै। 'व्यास' भक्ति बिनु को गति पावै॥

[२१४] राग सारंग

हरि बिनु जम की पाँसि जनेऊ।
सुक-सनकादिक मुकति भये, हरि-भजन करत हैं तेऊ॥
अगिन-कुण्ड रौरव कुण्डनि सम, मूंज मेखला बन्धनु।
स्त्रवा डण्ड स्वाहा-रब हाहा, भूलि गये नँदनन्दनु॥
कुस त्रिसूल, कण्टक रित्विज करि, द्विज-पण्डित जम-जूप।
प्रोडासान जु मास खवावत, आचारज जम रूप॥
ईहि बिधि कलजुग जज्ञ करत, कंजन-कामिनि की आस।
केवल भक्ति-भागवत बिनु, छिन ना जीवैं सुख पावै 'व्यास'॥

[२१५] राग कान्हरो

साकत बाह्मन, गूंगौ ऊँट।
भार लेत संसार, अहार बिकट काँटे कौ सूंट॥
चालि हालि सहि, नकुवा छेदि, चढ़चौं उटहेरा टूंट।
नक़नकाइ मारत हारत हू, देत न जल कौ घूंट॥
लये कुदान कारटौ[1] खाइ, बढ़ाइ निलज जग-खूँट।
'व्यास' वचन मानै बिनु बाढ़चौ, दारुन दुख कौ बूंट॥

[२१६] राग सारंग

पितर सेष जड़ स्यामहिं देत।
तिहिं पापी अपुने पितरनि के मुख में मेली रेत॥
सो ठाकुर-सेवक न जानिवौ; जो अधमनि की जूठन लेत।
तिनकी संगति पति - गति जैहै, मेरे चित यह चेत॥
स्याम केस सित होत न धोयें, कौला होत न सेत।
सहज भक्ति बिनु 'व्यास' नहीं कन सेबत ऊसर खेत॥

पाठान्तर—१. कारटौ, कारढो, काटौं।

[२१७] राग सारंग

करौ भैया ! साधुन ही सों संग ।
पति-गति जाइ असाधु संग तें, काम करत चित भंग ।।
हरि तें हरि-दासन की सेवा, परम - भक्ति कौ अंग ।
जिनके पद तीरथमै पावन, उपजावत रस - रंग ।।
तिनके बस दसरथ-सुत मारयौ, माया - कनक-कुरंग ।
तिनके कहत 'व्यास' प्रभु सुमिरयौ, सत्वर[1] धनुष निषंग ।।

[२१८] राग सारंग

जो तू माला तिलक धरै ।
तौ या तन - मन - ब्रत की लज्जा, ओर निवाह करै ।।
करि बहु भाँति भरोसौ हरि कौ, भव - सागर उतरै ।
मनसा, बाचा और कर्मना, तृन करि गनतु धरै ।।
सतो न फिरत घाट ऊपर तें, सिर सिंदूर परै ।
'व्यासदास' कौ कुञ्जबिहारी, प्रीत न कहुँ बिसरै[2] ।।

[२१९] राग सारंग

मूँड़ मुड़ाये की लाज निवहियै ।
माला-तिलक स्वाँग धरि हरि कौ, मारि-गारि सब ही की सहियै ।।
बिधि-ब्यौपार जार सों कलिजुग, हरि, भर्त्तार गाढ़ौ करि गहियै ।
अनन्य-ब्रत धरि सत जिनि छाँड़हु, विमद[3] संतनि की संगति रहियै ।
अगिन खाहु, बिष पियहु, परौ जल, बिषयनि कौ मुख भूल न चहियै ।
'व्यास' आस करि राधा-धव की, श्री बृन्दावन बेगि उमहियै ।।

[२२०] राग सारंग

कर लै करुआ कुञ्ज सहाइक ।
पीलू-पैंचू, साग-सैंगरै, छाछि - समाँ मन - भाइक ।।
बिहरत स्यामा-स्याम सनेही, दोनन के सुखदाइक ।
वृन्दावन की रेनु-धेनु, तरु - नीर सेइवे लाइक ।।

पाठान्तर— १. सत्वर, प्रतियों में सत्वर नहीं है ।
२. प्रीति न कहूं बिसरै, प्रति कबहू बिसरै । ३. विमद, विसद ।

अभिमानीनि सजा दै रोकत, ब्रजवासी हरि - पाइक।
काम-केलि सुख के रखवारे, हरषत बरषत साइक ॥
मगन सबै आनन्दसिन्धु में, नन्दादिक ब्रज - नाइक।
'व्यास' रास-भूमिहिं नहिं परसत, नीरस माया माइक ॥

[२२१] राग सारंग व धनाश्री

सोई घरी, सोई दिन, सोई पल, सोई छिन,
जबहिं मिलत मेरे प्यारे के प्यारे।
सोई घर - घरनी; सोई सुत, गुरु हित,[1]
जिनकैं रसिक नैंननि के तारे।
सोई 'व्यास' सोई दास, त्रास तजि हरि भजि,
रास दिखावै, सोई प्रान हमारे ॥

[२२२] राग कान्हरौ

सोई जननी, जो भक्तहिं जावै। सोई जनक, सु भक्ति सिखावै ॥
सोई गुरु, जो साधु सिखावै। सोई साधु, जो बिषै छुड़ावै ॥
सोई धर्म, जो भर्म नसावै। सोई धन, जो प्रीति बढ़ावै ॥
सोई सूर, जो मन न चलावै। सोई धीर, जो चित न डुलावै ॥
सोई मुख, जो हरि-गुन गावैं। सोई 'व्यास', जो रास करावै[2] ॥

[२२३] राग नट

कोई रसिक स्याम-रस पीवैगो। पीवैगो सोई जीवैगो ॥
पीवैगो सोई फूलैगो। तन - मन देख न भूलैगो ॥
पीवैगो सो नाचैगो। साधु - सङ्ग मिलि राचैगो ॥
चाखैगो सो जानैगो। कहनै कौन पत्यानैगो।
'व्यास' दास जिय भावैगो। तब अंग - खवासी पावैगो ॥

[२२४] राग नट

साँची भक्ति और सब झूँठौ।
पाई नारद स्याम - कृपा तें, खात साधु कौ जूठौ ॥

पाठान्तर:- १. सुत गुरु हित, सुत गुर हिति, सत गुर हित। २. करावै, बनावै।

जिन-जिन कौ हरि काज सँवारचौ, सृङ्गी रिषि सों रूठौ।
'व्यास' सुनो कि सुनी सुकदेव, परीछत ऊपर तूठौ ॥

[२२५] राग सारङ्ग

मेरौ मन मानत नाचें-गायें।
एकै प्रेम-भक्ति कौ फल है, मोहनलाल रिझायें ॥
गद्-गद् सुर, पुलकित जस गावत, नैननि नीर बहायें।
नट-गोपाल कपट नहिं मानत, कोटिन स्वाँग बनायें ॥
तजि अभिमान-दीनता जन की, स्याम रहत सचु पायें ॥
'व्यास' सुपच तारे, कुल बोरे बिप्रनि हरि बिसरायें ॥

[२२६] राग सारङ्ग

राधावल्लभ के गुननि गाइ लेहु।
तजहु असाधु, संग भजि साधुनि, हरि सों हित उपजाइ लेहु ॥
वृन्दावन निरुपाधि राधिकारमन सों, प्रीति बढ़ाइ लेहु।
नव-निकुञ्ज सुख-पुञ्जनि बरषत, नैननि सुख दिखराइ लेहु ॥
पावन पुलिन रासमण्डल में, मन दै तनहिं नचाइ लेहु।
गद्-गद् सुर, पुलकित कोमल चित, आनँद-नीर बहाइ लेहु ॥
बिमद-बिमत्सर रसिक-अनन्य-चरन-रज सिर लपटाइ लेहु।
इहिं बिधि महाप्रसादहिं पावत, सहचरि 'व्यास' कहाइ लेहु ॥

[२२७] राग सारङ्ग

कुञ्जनि-कुञ्जनि रसमय लूट।
दस दिसि निसि-बासर वृन्दावन-चन्द, वृन्द सब छूट ॥
राग-भोग अनुरागनि बिलसत, जा तन देख्यौ कूट।
गुन-सागर नागर रस-रूप-कूप-जल जात न टूट ॥
रसिक अनन्य कहाइ अनत बसि, राजा-राउ न फूट।
लोक-प्रतिष्ठा बिष्ठा लगि, सतु हारचौ चारौं खूट ॥
ज्यों अनबोलैं ऊँट भार सहि, भजि काटै सरहूट।
ऐसैं 'व्यास' दुरास-पास बँधि, क्यों आवै पसु छूट ॥

[२२८] राग गौरी

हरि-गुन गावत कलिजुग सुनियतु, भयौ सबनि कौ काज।
साखि-भागवत बोलत अजहूँ, काहै करत अकाज ॥
सुक-सनकादिक जेहि रस माते, तजि संसार-समाज।
जेंहि रस राज परीछति राँचे, बिसरि गयौ जल-नाज ॥
जिहिं रस प्रेम-मगन भईं गोपी, तजि सुत-पति-गृह-लाज।
सो रस 'व्यासदास' की जीवनि, राधा मोहन आज ॥

[२२९] राग गौरी

स्याम-कृपा बिनु दिन दुख दूनौ।
अपने ही अभिमान जरत जग, भयौ काज अति झूनौ ॥
भक्ति-मुक्ति कौ दाता है हरि, प्रभु बगसत अति पूनौ।
कूरनि कों मुहरें देत, 'व्यास' कों ईंटै - पाथर - चूनौ ॥

सिद्धावस्था

[२३०] राग सारंग

जासों लोग अधर्म कहत हैं, सोई धर्म है मेरौ।
लोग दाहिने मारग लाग्यौ, हौंब चलत हौं डेरौ ॥
द्वै-द्वै लोचन सबही कें, हौं एक आँखि कौ ढेरौ।
और आब हौं कौन काम कौ, ज्यों बन बुरौ बहेरौ ॥
लोगन कौं पुर - पट्टन - खेरौ, नाहिंन मेरौ बसेरौ।
मृगया करि जो काम न आवै, मर्कट मांस अहेरौ।
जिनकी ये सब छोति करत हैं, तिनहीं कौ हौं चेरौ।
सूजी नरी घुरहुटी 'व्यास' के मन में बस्यौ बँड़ेरौ ॥

[२३१] राग सारंग

अब मैं वृन्दावन धन पायौ।
राधा-चरन-सरन मनु दीनौं, मोहनलाल रिझायौ ॥

सूतौ हुतौं बिषै - मंदिर में, श्री गुरु टेरि जगायौ।
अब तौ 'व्यास' बिहार बिलोकत, सुक-नारद मुनि गायौ।।

[२३२] राग धनाश्री

हरि बिनु, छिन न कहूँ सुख पायौ।
दुख-सुख-संपति बिपति भोगवत, स्वर्ग-नर्क फिरि आयौ।।
लोक चतुर्दस बहुबिधि भटक्यौ,स्वारथ लगि,मैं हरि बिसरायौ।।
कोटि गाय - बाँभन मारे कौ, ताप पाप उपजायौ।।
कबहुँक सुपच सरीर धरचौ, चोरी बल उदर बढ़ायौ।
कबहुँक विद्या-बाद-स्वाद लगि बाह्मन ह्वै पुजवायौ।।
कबहुँक रंक निसंक भयौ, घर-घर फिरि जूठौ खायौ।
कबहुँक सिंहासन पर बैठचौ, छत्र-चौंर ढरवायौ।।
कबहुँक कंचन-कामिनि लगि, रन-दूलह बिरद बुलायौ।
कबहुँक बिषयी-बिषयनि कारन, घर तजि मूंड़ मुड़ायौ।।
ऐसें नाना धर्म-कर्म करि, जनम-जनम डहकायौ।
अबकैं रसिक अनन्यनि 'व्यास'हिं, राधा-रमन बतायौ।।

[२३३] राग भूपाली

बिसद कदंबनि की कल बाटी।
वृन्दावन रस-बीथिन रसमय, रसिकन की परिपाटी।।
नवदल-साल - तमाल - गुच्छ - छबि, तोरन- रचना ठाटी।
अमित नमित फूलनि की झूलनि, रमित महल की टाटी।।
अति आवेस सुदेस निलज ह्वै, लाज लाज की काटी।
स्यामा-स्याम केलि-बल रोकी, मदन-मान की घाटी।।

सरस सुधंग राग-रागिनि मिलि, गावत है करनाटी।
तान-तरंग सुनत ही, सकल गुनन की परदा फाटी॥
और सकल साधन नीरस, या रस बिन सब गुर माटी।
छाँड़ि प्रपंच नाँच नट कौ सौ 'व्यास' संधि यह डाटी॥

[२३४]   राग सारंग व भूपाली

तन अब ही कौ कामै आयौ।
साधु-चरन कौ संग कियौ, जिन हरि जू कौ नाम लिवायौ॥
धन्य बदन मेरौ, जिनि रसिकनि कौ जूठौ खायौ।
रसना मेरी धन्य, अनन्यनि कौ चरनोदक प्यायौ॥
धन्य सीस मेरौ, श्रीराधा - रमन - रेनु - रस लायौ।
धन्य नैन मेरे, जिन वृन्दावन कौ सुख दिखरायौ॥
धन्य स्रवन मेरे, श्री राधा - रमन - बिहार सुनायौ।
धन्य चरन मेरे, श्री वृन्दावन गहि अनत न धायौ॥
धन्य हाथ मेरे, जिन कुञ्जन में हरि - मंदिर छायौ।
धन्य 'व्यास' के श्री गुरु, जिन सर्वोपरि रंग बतायौ॥

[२३५]   राग कान्हरौ

मनुवाँ मेरे*, तू हरि-पद अटक्यौ।
अब तैं साँचौ सुख पायौ, तब दुख लगि घर-घर भटक्यौ॥
भली करी तैं मोह तोरिकें, वृन्दावन कौं सटक्यौ।
तैं देख्यौ कुञ्जनि में मोहन, राधा के उर लटक्यौ॥
तेरे बस को-को न बिगूच्यौ, जन्मत-मरत न मटक्यौ।
'व्यास' दास ह्वै कै किनि उबरहु, आसा-डाइन सब जग गटक्यौ॥

[२३६]

सुधारयौ हरि मेरौ परलोक।
श्री वृन्दावन में कीन्हौ, दीन्हौ हरि अपनौ निज ओक॥

पाठान्तर—* मन बावरे; मनुआँ मेरे; मनुवाँ मेरे

माता कौ सौ हेत कियौ हरि, जानि आपनौ तोक।
चरन-धूरि मेरे सिर मेली, और सबन दै रोक।।
ते नर राकस, कूकर, गदहा, ऊँट, बृषभ, गज, बोक।
'व्यास' जु वृन्दावन तजि भटकत, ता सिर पनहीं ठोक।।

[२३६]

स्याम निबेरचौ सबकौ झगरौ।
निजु दासनि के दास करे हम, पायौ नाम अचगरौ।।
देवी-देवा, भूत-पितर, सबही कौ फारचौ कगरौ।
पावन गुन गावत तन सुधरचौ, तब रसिकन पथ डगरौ।।
मिट गई चिंता मेरे मन की, छूटि गयौ भ्रम सगरौ।
चारि पदारथ हू तें न्यारौ, 'व्यास' भक्ति-सुख अगरौ।।

[२३७ [

गरजत हौं, नाहिन नैकौ डरु।
और सहाइ करत है, मेरौ श्री गोपाल धुरंधर।।
धन गोधन मेरें, रस गोरस, छाया करत कलपतरु।
जाति-पाँति बल्लभ(गोप)कुल मेरैं, वृन्दावन साँचौ घरु।
बंशीवट, जमुना-तट, खरिक-खोरि-बीथी जीवन वरु।
विहरत 'व्यास' रास में, हंस-हंसनि मान-सरोवरु।।

[२३८] राग नट

लोग बेकाज करत उपहास।
स्याम संग खेलत सचु पायौ, काम कियौ कुल नास।।
कठिन हिलग कौ फंद* परचौ,अब कैसें होत निकास*।
पिय सों हित हठ और निवाह्यो, जौ लगि कंठ उसास।।

पाठान्तर—* फंद (ग, छ); पंथ;
* निकास; निवास,

मोहन-मुख-सुख की चाहनि में, कैसैं मानौं त्रास।
'व्यास' उदास भये, रस चाहैं, तजि नागर कौ पास ।।

[२४०]

हरि पाये मैं लोलक चैया।
जोग, जग्य, तीरथ, ब्रत, संजम, कर्म, धर्म मेरी करत बलैया ।।
बेद-पुरान-स्मृति-तरु कौ फल, प्यारौ कुंवर कन्हैया।
वृन्दावन घर, नंद पिता, जसुदा ताकी है मैया ।।
राधा जाकी घरनि तरुनि-मनि, श्रीदामा जाकौ है भैया।
संतत राग-भोग जूठनि कौं, 'व्यास'हिं करौ बिलैया ।।

[२४१]　　　　　　　　　　राग बिलावल

साँचौ धनु मेरैं दीनदयाल।
जुग-जुग लेत-देत नहिं निघटै, मैं पायौ अजगैवी माल ।।
ता बिनु सकल लोक की संपति, पायैं हू जु होइ बेहाल।
ताकौ नाम, रूप, गुन गावत, निकट न आवै माया-काल।
नवल-किसोर भव-बंध छोरिहै, रंक सुदामा कियौ निहाल ।।
निज दासनि दिन पुष्ट करत हरि, दुष्टनि कौ कीनौ मति-चाल।
रसिक अनन्य किये जिहिं वटुवा, नटवा ह्वै रीझै गोपाल।
सुख, संतोष, मोक्ष भक्तनि दै, विमुखनि दारुन दुख जंजाल ।।
श्रीराधा मानसरोवर अङ्ग-अङ्ग,मुक्ता चुनि-चुनि जियत मराल।।
कामधेनु तजि 'व्यास' किन्हैं भजि,निस-दिन बाढ्यौ छाती-साल ।।

[२४२]　　　　　　　　　　राग बिलावल

जैसें सुख मोहन हमहिं दिखावत।
ऐसे सुख भुगति मुकति के भोगी, सपनैं हू नहिं पावत।।
दरसन दै सब पाप दूरि करि, परसत पाप नसावत।
महाप्रसाद बिषाद हरत मन, मोद बढ़त गुन गावत ।।

उपजत प्रीति-प्रतीति साधु-मुख, श्री भगवंत सुनावत।
हरि की कृपा जानियै तब ही, संत घरहिं जब आवत॥
इहिं बिधि 'व्यास' कहाइ अनन्य, पाइ सुख, अनत न कितहूँ धावत॥

[२४३] राग केदारौ

नाचत-गावत हरि सुख पावत।
नाँचि-गाइ लीजै दिन द्वै, पुनि कठिन काल-दिन आवत॥
नाँचत नाऊ, जाट, जुलाहौ, छीपा नीकै गावत।
पीपा अरु रैदास, बिप्र जयदेव सु भलें रिझावत॥
नाँचत सनक, सनंदन अरु सुक, नारद मुनि सचु पावत।
नाँचत गन गंधर्व-देवता 'व्यास'हिं कान्ह जगावत॥

[२४४] राग केदारौ

मेरे भांवते स्यामा-स्याम।
रास-बिलास करत वृन्दावन, बिबिध बिनोद ललाम॥
नख-सिख अंग लुभारे-प्यारे, ज्यों लोभिन कों दाम।
रूप-अबधि, गुन-जलधि, रंग-निधि, सब बिधि पूरन-काम॥
मंद हसनि छबि छली अलिहिं, बंक बिलोकनि बाम।
'व्यास' बिहार निहारति रसिकनि, भूले तन-मन-धाम॥

[२४५] राग धनाश्री

अरौसी-परौसी हमारे भैय्या-बंधु, भँवर, पिक, चातिक, बक, तमचोर।
प्यारे कारे-पीरे खग-मृग, हितुवा चंद-चकोर॥
मोहन धुनहिं सुनावत गावत, मन भावत चितचोर॥
बिटप-वेलि, फल-फूल हमारे, मूल निकुञ्ज-किसोर।
सुन्दर, सुघर, सुदिन हैं हमारे, संत-केलि निसि भोर॥
सुखनिकरत, दुख हरत हमारे, त्रिबिध समीर-झकोर॥

तन-मन-ताप बुझावत जमुना-बारि बिहारि हिलोर ।
रैनु-धैनु आनंदकंद, रस बैन सप्त सुर घोर ।
रास-बिलास 'व्यास' की जीवनि, जोरी जोबन-जोर ।।

[२४६]   राग सारंग

लगै जो वृन्दावन कौ रंग ।
सब संदेह देह के जैहैं, अरु बिषयनि कौ संग ।।
जैसैं बाजहिं नाजु लगत ही, करत है उदर मृदंग ।
ऐसैं सहज माधुरी परसत, उपजत गुन कौ अंग ।।
जैसे कामी कामिनि देखत, बाढ़त दुसह अनंग ।
ऐसैं ही 'व्यास' बिहार बिलोकत, साधन सों चित भंग ।।

साधक अवस्था [२४७]   राग सारंग

मन दै जुगलकिसोरहिं गाउ ।
सेवत राधा संग वृन्दावन, बारक देखन आउ ।।
या सुख तें टरियै वा सुख लगि, करियै बेग उपाउ ।
अपनै कर कुठार गहि रहि, कत मारत अपनै पाउ ।।
बिषै-भोग कों बिषयनि सेवत, यह सयान बहि जाउ ।
'व्यास' आस तजि छिन-भंगुर की, देह सवारौ दाउ ।।

[२४८]   राग सारङ्ग

परम पद कहत कौन सों लोग ।
कोऊ तहाँ तें गयौ न आयौ, ऐसौ सुख-संजोग ।।
मेरे मतैं साधु है सोई, जहाँ भक्ति - रस-भोग ।
'व्यास' करत है आस तहाँ की, जहाँ न भय-भव रोग ।।

[२४९]   राग सारङ्ग

करता स्याम सनेही सब कैं ।
जुग जुगवतु जग जीवनि कैसैं, जिनहिं छाँड़िहैं अब कैं ।।

बहुत दुखित दुख-सागर तें, हरि काढ़ि लये कर केसनि ह्व कें।
इतनी आस 'व्यास' की पुजवहु, राखहु वृन्दावन में दबकें॥

[२५०] राग सारङ्ग

सुनि बिनती मेरी तू रसना, राधावल्लभ गाइ।
बृथा काल खोवहि, जिन सोवहि, छिन-भंगुर तन आइ॥
सुनि सुख-सदन बदन मेरे, तू प्रीति-प्रसादहिं पाइ।
सुनि दुख-मोचन मेरे लोचन, जुगल-किसोर दिखाइ॥
सुनहि स्रबन, रति-भवन किसोरहिं गावत नैकु सुनाइ।
सुनि नासा, तू चारु चरन पंकज की वास सुँघाइ॥
सुनि तू सिर, पावन चरनोदक रुचि अभिषेक कराइ।
सुनि कर, तू मंदिर की सेवा सुख पर प्रीति बढ़ाइ॥
सुनहि चरन, तू वृन्दावन तें अनत न पैंड़ चलाइ।
सुनि मन, हरषि रासलीला पर सन्तत रुचि उपजाइ॥
सुनि चित, बिनती आस तजहि नित दासहि हाथ बिकाइ।
सुनि बुधि, सुकरि जु कुञ्ज-महल में सुख-पुञ्जहिं बरषाइ॥
सुनहि लोक-करता की इंद्री, बिषै - बिकार बिहाइ।
सुनि बनिता, हरि की दासी ह्वै, मेरौं करहि सहाइ॥
सुनि सुत, नवलकिसोर-दास ह्वै, हरि-गुन गाव-गवाव।
सुनि सिष, हौं भव-जल बूड़त हौं, हरि-पद सेवहु नाव॥
ईंहि कलि-काल गुपाल-भजन कौ, आनि पर्‍यौ है दाव।
बिनती सुनहु 'व्यास' की सब ही, हरि बिनु अनत न ठांव॥

[२५१] राग देवगन्धार

गावत मन दीजै गोपालहिं।
नाँचत हरि पर चितु दीजै, तौ प्रीति बढ़ै प्रतिपालहिं॥

बिनु अनुरागहिं, राग न मीठौ, सीठौ बिनु गुन-मालहिं।
सब साधन सीठे धन कारन, कत कूटत है गालहिं ॥
गदगद सुर पुलकति असुवनि बिनु, भक्ति न भावत लालहिं।
ऐसौ काकौ भाग, जु नाँचत-गावत पावत कालहिं ॥
मुँह गावत गोपालहिं कपटी, मन में धरि भूपालहिं।
हाथी कौ सौ स्वाँग धरत, पुनि चलत स्वान की चालहिं ॥
घर-घर भटकि-मटकि धन कारन, पहरि लजावतु मालहिं।
पथरा गरैं बाँधि किनि बूड़हु, जब छाँड़त नँदलालहिं ॥
अधम प्रतिष्ठा बिष्ठा लगि तजि, बसि वृन्दाविपिन रसालहिं।
आसा-पासि बँधै क्यों छूटै, 'व्यास' बिसारि कृपालहिं ॥

[२५२] राग देवगंधार

रसना, स्यामहिं नैंक लड़ाउ री।
चढ़ि बैकुण्ठ-नसैंनी हरि-पद, प्रेम-प्रसावहिं पाउ री ॥
छाँड़ि पराई निंदा, बिंदा - गोबिन्दा - गुन गाउ री।
भव-सागर तरिवे के काजै, नाहिंन आन उपाउ री ॥
बे ही काजे जा देही की, छिन-छिन घटत जु आउ री।
ईहिं कलि-काल गुपाल-भजन बिनु, सुख सपने नहिं पाउ री ॥
हरि बिमुखन कौ आजु नाजु-जल, कारी धारि बहाउ री।
रसिक अनन्यनि की जूठनि पर, 'व्यास'हिं रुचि उपजाउ री ॥

[२५३] राग देवगंधार

मन रति, वृन्दावन सौं कीजै।
खायौ पियौ भरचौ भूंज्यौ अब, जोवन कौ फल लीजै ॥
काज-अकाज जानि सब आपुनौ, दाउ सवारौ दीजै।
देखि धेनु; सुनि बैनु रैंन तजि, धृक-धृक जग जो जीजै ॥

जमुना-तट वंशीवट निकट रहत, जो यह तन छीजै।
बरषत स्यामा-स्याम-रस, 'व्यास' नैन भरि पीजै ।।

[२५४] राग सारंग

मन, तू वृन्दावन के मारग लागि।
तेरौ न कोउ, न तू काहू कौ, माया-मोह तजि भागि ।।
यह कलि-काल-व्याल विष भोयौ, जगु सोयौ, तू जागि।
भवसागर हरि-बोहित कौ, तू होहि कृपा करि कागि ।।
गो-गिरि-सर-सरिता-द्रुम-कुञ्जनि सों जोरहि अनुरागि।
'व्यास' आस करि राधा-धव की, ब्रजवासिन के कौरा माँगि ।।

[२५५] राग सारङ्ग

हरि मिलि हैं मोहि वृन्दावन में।
साधु-वचन[1] मैं साँचे जाने, फूल भई मेरे मन में ।।
बिहरतसङ्ग देखि अलिगन जुत, निबिड़ निकुञ्ज-भवन में।
नैन सिराय पाइ गहिबी, तब धीरज रहै कवन में ।।
कबहुँकि रास-बिलास प्रगटिहै, सुन्दर सुभग पुलिन में।
बिबिध बिहार-अहार सच्यौ है, 'व्यासदास' लोचन में ।।

[२५६] राग सारङ्ग

हम कब होंहिगे व्रजवासी।
ठाकुर नन्दकिशोर हमारे, ठकुराइन राधा सी ।।
सखी-सहेली कब मिलिहैं, वे हरिवंशी-हरिदासी।
बंशीवट की शीतल छैंयाँ, सुभग नदी जमुना सी ।।
जाकी वैभव करत लालसा, कर मोड़त कमला सी।
इतनी आस 'व्यास' की पुजवौ, वृन्दाविपिन-बिलासी ।।

[२५७] राग सारंग

वृन्दावन कबहिं बसाइहौ।
कर करुवा, हरवा गुञ्जनि के, कटि कोपीन कसाइहौ ।।

---

१. पाठान्तर—वचन, चरन।

घर-घरनी,करनी कुल की तें, मो मन कबहिं नसाइहौ।
नाँक सकोरि,बिदोरि बदन, इन बिमुखनि कबहिं हँसाइहौ ॥
सुभग भूमि में चपल चरन ये, बन-बन कबहिं फिराइहौ।
राधाकृष्ण नाम द्वै अच्छर, रसना रसहिं रसाइहौ ॥
वंशीवट जमुना-तट के सुख, मो मन कबहिं लसाइहौ।
'व्यासदास' कों नील-पीत-पट, कुञ्जनि दुरि दरसाइहौ ॥

[२५८]   राग सारङ्ग

अब न और कछु करनै, रहनै है वृन्दावन।
हौनौं होइ सो होइ किनि, दिन-दिन आयु घटति झूठे तन ॥
मिलिहैं हित ललितादिक दासी, रास में गावत सुनि मन।
जमुना-पुलिन-कुञ्ज, बन-बीथिनि, बिहरत गौर-स्याम-घन ॥
कहा सुत-सम्पति-गृह-दारा, काटहु हरि माया के फंदन।
'व्यास' आस छाँड़हु सब ही की, कृपा करी राधा-नँदनंदन ॥

[२५९]   राग सारंग

करि मन वृन्दावन सों हेत।
निसि-दिन-छिन छाया जिनि छाँड़हि,रसिकन कौ रस-खेत ॥
जहँ श्रीराधा-मोहन बिहरत, करि कुञ्जनि संकेत।
पुलिन रास-रस-रंजित देखत, मनमथ होत अचेत ॥
वृन्दावन तजि, जे सुख चाहत, तेई राकस-प्रेत।
'व्यासदास' के उर में बैठ्यौ,मोहन कहि-कहि देत ॥

[२६०]   राग केदारौ

करि मन, वृन्दावन में वास।
कपट-प्रीति के लोगनि तजि, भजि जौ लगि कंठ उसास ॥
खेलत राधा-मोहन, जामहिं होत सदा निसि रास।
कुञ्ज-कुटीर तीर जमुना के, धीर समीर बिलास ॥

नख-सिख बिटप बेलि लपटाने, जहँ-तहँ कुसुम-बिकास।
बोथिन बीच-कीच रँग जाकौ, नाहिन कहूँ निकास॥
सुख को खान जान बंसीबट, कीनौ सुरत अवास।
पावक-रवि कौ तेज न, संतत सरद बसन्त निवास॥
हरित भूमि, जल सीतल, छाहीं, गाय-ग्वाल कौ पास।
बहै फिरत दधि-दूध चहूँ दिशि, सकल दुखन कौं नास[1]।
स्यामहिं गावति गोपी, रसिक अनन्यनि होत उदास[2]।
पुजवहु आस 'व्यास' की मोहन, अब जिनि करहु बिसास॥

[२६१] राग सारंग

रहि मन, वृन्दावन की सरन।
और न ठौर कहूँ मो-तोकों, सम्पति चारयौ चरन॥
कुञ्ज-केलि कमनीय, कुसुम-सयनीय देखि, सुख-करन।
राग भोग संजोग होत जहँ, रजनी रति[2] की तरन॥
तरुनी-तरुन प्रताप चाँप बल, काल-व्याल कौ डरन।
तरनि तेज कर भूमि न परसत, पावक माया बरन॥
बहत मरुत मकरन्द उड़ावत, मृदु छबि शीतल परन।
सुक, सनकादिक, नारद गावत, सुख पावत आधरन॥
यह रस पशु नीरस सतु छाँड़ै, भाजत पेटहिं भरन।
'व्यास' अनन्य भक्त की जीवनि, बन में मङ्गल मरन॥

[२६२] राग सारंग

होहु मन वृन्दावन कौ स्वान।
जो गति तोकों देहैं ऐसी, सो गति लहै न आन॥
बेगि बिसरिहै कामिनि-कूकरि, सुनत स्याम-गुन-गान।
ब्रजवासिन की जूठन जेंवत, बेगि मिलैं भगवान॥

पाठान्तर—१. प्रति में ये दोनों पंक्तियाँ नहीं हैं।
२ रति, रस।

जहां कल्पतरु, कामधेनु के वृन्द विराजत जान।
बाजत जहां स्याम - श्यामा के सुरत - समर-नीसान ॥
सदा सनातन राधा बन कौ, प्रलैं खिसत नहिं पान।
तीरथ और सकल जबहीं लगि, तब लगि शशि अरु भान ॥
है बैकुण्ठ एक सुनियतु, ताकौ साधन गुरु कौ ज्ञान।
ब्रज में भये चत्रभुज कौं, राका वर बैनु-विषान ॥
नन्द-जसोदा गो-गोपिन के, मोहन तन - धन-प्रान।
'व्यास' बेद ब्रज-वैभव जानत नाहिन करत बखान।

[२६३] राग देवगन्धार

ऐसौ मन कब करिहौ हरि मेरौ।
कर करवा, कामरि काँधे पर, कुञ्जनि - माँझ बसेरौ ॥
व्रजवासिन के टूँक भूख में, घर-घर छाछि-महेरौ।
छुधा लगै जब माँगि खाउँगौ, गनौं न साँझ-सवेरौं ॥
रास-बिलास वृत्ति कर पाऊँ, मेरें खूँट न खेरौ।
'व्यास' बिदेही बृन्दावन में, हरि-भक्तन कौ चेरौ ॥

[२६४] राग सारंग

बलि जाऊँ,बलि जाऊँ,राधा मोहि रहन दै वृन्दाबन की सरन।
मोकौं ठौर न और कहूँ अब, सेउँगौ ये चरन ॥
सहचरि ह्वै तेरी सेवा करौं, पहिराऊँ आभरन।
अति उदार अङ्ग-अङ्ग माधुरी, रोम-रोम सुख करन ॥
देखौं केलि-बेलि मन्दिर में, सुनि किंकिन-रव स्रवन।
दीजै बेगि 'व्यास' कौं यह सुख, जहाँ न जीवन-मरन ॥

[२६५] राग सारंग

राधा, आसा पुजवौ मेरी।
हा, हा, कुँवरि-किशोरी बलि जाऊँ, करहु आपनी चेरी ॥

मोंहि स्याम कौ डर नहिं, स्यामा ! छुटत न आसा तेरी।
अगति जाति तें मेरी देही, भव-सागर तें फेरी॥
कामधेनु के संग न सोहै, सदाँ छोति में छेरी।
तुव पद-पंकज-पारस परसत, 'व्यास' कहा अब खेरी॥

[२६६] राग गौरी

किसोरी, तेरे चरननि की रज पाऊँ।
बैठि रहौं कुञ्जनि के कौने, स्याम-राधिका गाऊँ॥
या रज सिव-सनकादिक-लोचन, सो रज सीस चढ़ाऊँ।
'व्यास' स्वामिनी की छबि निरखत, बिमल-बिमल जस गाऊँ।

[२६७] राग गौरी

किसोरी, मोंहि अपनी करि लीजै।
और दियै कछु भावत नाहीं, श्री वृन्दावन दीजै॥
खग-मृग-पसु-पंछी या बन के, चरन-सरन रख लीजै।
'व्यास' स्वामिनी की छबि निरखत, महल-टहनी कीजै।

[२६८] राग सारंग

जीवन मरत वृन्दावन सरनैं।
सुनहु सुचित ह्वै राधामोहन, यह बिनती मन धरनैं।
यहै परम पुरुषारथ मेरैं, और कछू नहिं करनैं।
स्याम भरोसे तेरे ब्रत के, नहीं 'व्यास' कों टरनैं॥

[२६९] राग सारङ्ग

कहाँ हौं वृन्दावन तजि जाऊँ।
मोसे नीच-पोच कों अनत न, हरि बिनु और न ठाउँ।
सुख-पुञ्जनि कुञ्जनि के देखत, विषय विषै क्यों खाउँ।
एक आगि कौ डाढ़्यो, दूजी आग माँझ न बुझाउँ॥

एक प्रसन्न न मोपर निसिदिन, छिन-छिन सबैं कुदाउँ।
राधारमन-सरन बिनु अब, हौं काके पेट समाउँ॥
भोजन-छाजन की चिंता नहिं, मरिवे हू न डराउँ।
सिर पर सेंदुर 'व्यास' धरयौ, अब ह्वै है स्याम सहाउँ॥

[२७०] राग सारङ्ग

जरतु जग अपने ही अभिमान।
लोभ लहरि तें भागि उबरियें, रहियै हरि की आन॥
एकनि विद्या-धन-कुल कौ मद, एक गुनी गुन-गान।
एक रहत जोबन - मदमाते, एक जती तप - दान॥
भारत, रामायन मूसल सुनि, अजहुँ न जागे कान।
'व्यास' बायसहिं वेगि उड़ावहु, हरि की कृपा-कमान॥

[२७१] राग सारंग

मोहिं देउ भक्ति को दान।
या संपति कौ दाता और न, हौं मागौं कछु आन॥
एक चरू जल प्यासौ जीवै, यौं राखे कौ मान।
पाछैं सुधा-सिंधु कहा कीजै, छूटि गये जो प्रान॥
ऐसें अंगनि देइ कुरंग, सुनत नादहिं सहि बान।
जैसें मद-गयंद बिनु बिछुरें, सहि न सकत ऐलान॥
तैसें भृङ्ग बँध्यो जल-सुत सों, एक लोभ परधान।
ऐसें 'व्यास' आस कर बाँधे, मुकरे वे भगवान॥

[२७२] राग सारंग

मेरे तन सों वृन्दावन सों, हरि जिन करहु बिछोह।
अरु यह साधु-संग जिन छूटौ, ब्रजवासिन सों टोह॥
देउ कृपाल कृपा करि मोकों, राधा-पति सों मोह।
विषई बिषय कनक-कामिनि सों, मोहिं करो निरमोह॥

चारु - चरन - रज - पारस परस्यौ चाहत हौं मन-लोह।
रागादिक बैरिन में 'व्यास' हिं मोहन करहु निलोह।।

[२७३] राग गौरी (अठताल)

ऐसौ बृन्दावन मोहिं सरनैं।
जा महँ स्यामा-स्याम बिराजत, तीन काल दोउ तरनैं।।
सदा किसोर विटप-मंडल-दल, किसलय कुसुमत फरनैं।
अदभुत जोटहिं ओट राखि, सेवत नित चारचौ चरनैं।।
निबिड़-निकुँज मंजु कुंजावलि, चलत पत्र मन-हरनैं।
बिहरत बिपिन-खंड रति-मंडन, राधा-हरि के सरनैं।।
रसिक अनन्यनि मोहन-वन तें अनत कहूँ नहिं टरनैं।
'व्यास' धर्म तजि भक्ति गही, ताहू तजि नर्कहिं परनैं।।

[२७४] राग कान्हरो

मेरी पराधीनता मेटौ हरि किन।
अपने सरन राखि लेहु बलिजाऊँ, बिमुखनि के द्वारे उझकौं जिन।।
तुम्हरे दासहिं आस और की, उपजत नाहिन, स्याम तुम्हें घिन।
सिंघन के बालक भूखे हू तजत प्रान, नहिं चरत हरचौ तृन।।
ताही प्रभु की प्रभुता साँची, जाकौ सेवक सुख पावै दिन।
'व्यास' हिं आस राधिका-वर की, जग रूठौ,तूठौ अब ही किन।।

[२७५] राग कान्हरो तथा सारंग

ऐसैहिं काल जाइ जो बीति।
निसि-दिन कुंज-निकुंजनि डोलत, कहत-सुनत रस-रीति।।
बिमद बिमत्सर चरन-सरन ह्वै, बिषै जाइ जो जीति।
नाँचत-गावत रास-रेनु में, तन छूटै जो प्रीति।।
या रस बिनु सब साधन फीके, ज्यौं बिनु लौंन पहीति।
रसिकनि की हरि आस पुजैहैं, यह 'व्यास' हिं परतीति।।

[२७६] राग कान्हरौ

श्री राधाबल्लभ कौ हौं भावतौ चेरौ ।
राधाबल्लभ कहत सुनत ही, मन न नैंम जम केरौ ।।
राधाबल्लभ वस्तु भूलि हू, कियौ अनत नहिं फेरौ ।
राधाबल्लभ 'व्यासदास' कैं, सुनहु स्रवन दै टेरौ ।।

[२७७] राग कान्हरौ

श्री राधाबल्लभ तुम मेरे हित ।
और सबै स्वारथ के संगी, गुरी चोपरी दै पोषत पितु ।।
यह मैं जानि सबनि सों तोरी, तुम सों जोरी, दै चरनन चितु ।
इतनी आस'व्यास' की पुजबहु, ज्यों चातिक पोषत पावस रितु ।।

१०. कनिष्ठ भक्तावस्था

[२७८]

जौ पै सबहिन भक्ति सुहाती ।
तौ बिद्या, बिधि बरन, धर्म की, जाति रसातल जाती ।।
होते जो न बहिर्मुख कलिजुग, आनँद सृष्टि अघाती ।
होती सहज समीति सबनि में, प्रीति न कहूँ समाती ।।
जो भागवत रीति गुरु चलते, तौ कति भक्ति बिकाती ।
जो साधुन कौ संग न तजते, तौ कत जरती छाती ।।
जो मंदिर करि हरि कों भजते, तौ कत लिखते पाती ।
जथा लाभ-संतोष रहत ही, मिलते स्याम सँगाती ।।
कृष्न - कृपा न होइ सबहिनि पै, माया जाहि डराती ।
'व्यासदास' भागि किन उबरौ; आगि तें आसा ताती ।।

[२७९]

हमारैं कौन भक्ति की रीति ।
साधन पुरुषारथ कछु नाहीं, संतन सों न समीति ।।

कायर, कुटिल, अधम, लोभी, हम निसदिन करत अनीति।
सपनेंहूँ नहिं स्याम-चरन-रति, विषइनि सों बहु प्रीति ॥
तीरथ, करम, धरम, व्रत नाहीं, लोक-वेद की भीति।
महा पतित-पावन हरि कहियतु, 'व्यास'हिं यह परतीति ॥

[२८०] राग सारंग

अब हम हू से भक्त कहावत।
माला-तिलक स्वाँग धरि हरि कौ, नाम बेंचि धन लावत ॥
स्यामहिं छाँड़त काम विवस ह्वै, कामिनि ही लगि धावत।
हरुवे होत तूल तृन हू तें, पर-घर गये न भावत ॥
श्री गुरु कौ उपदेस लेस नहिं, औरन मंत्र सुनावत।
छल-बल लेत, देत नहिं दीननि, अपने जस कों गावत ॥
भक्ति न सूझत सुनत भागवत, साधु न मन में आवत।
कियौ अकाज 'व्यास' कौ आसा, बन ही में घर छावत ॥

[२८१]

मोसौ पतित न अनत समाइ।
याही तें मैं वृन्दावन कौ सरन गह्यौ है आइ ॥
बहुतनि सों मैं हित करि देख्यौ, अनत न कहूँ खटाइ।
कपटि छाँड़ि मैं भक्ति कराई, दारा-सुतनि नचाइ ॥
भक्ति पुजाये लीला करि, सबही की जूँठनि खाइ।
ता ऊपर बिरचे सब मोसों, कोटि कलंक लगाइ ॥
अजहूँ दाँत पन्हैया गहि, तिनहू के चाटौं पाइ।
तौ न तिन्हें परतीत 'व्यास' की, सत छाँड़े पति जाइ ॥

१९. कुटुम्ब-उपदेश

[२८२] राग सारंग

विनती सुनियै वैष्नव दासी !
जा सरीर में बसत निरंतर, नरक ब्याधि, पित, खाँसी ॥

ताहि भुलाइ, हरिहिं दृढ़ गहियौ, हँसत संग सुख वासी।
बढै सुहाग ताहि मन दीजै, और बराक बिसासी॥
ताहि छाँड़ि हित करौ और सौं, गरै परै जम-फाँसी।
दीपक हाथ परै कूवा में, जगत करै सब हाँसी॥
सर्वोपरि राधापति सों रति; करत अनन्य विलासी।
तिनकी पद रज सरन 'व्यास' कों; गति वृन्दावन वासी॥

[२८३] राग सारंग

जो त्रिय होय न हरि की दासी।
कीजै कहा रूप, गुन सुन्दर, नाहिंन स्याम-उपासी॥
तौ दासी गनिका सम जानौ, दुष्ट, राँड, मसवासी।
निसि-दिन अपनौ अंजन-मंजन करत, विषय की रासी॥
परमारथ स्वप्नै नहिं जानत, अंध बँधी जम-फाँसी।
ताके संग रंग पति जैहै, ताते भली उदासी॥
साकत नारि जु घर में राखै, निस्चै नरक निवासी।
जिहिं घर साधु न आवत कबहूँ, गुरु-गोविंद मिलासी॥
हरि कौ नाम लेत नहिं कबहूँ, याही तें सब नासी।
'व्यासदास' जोई पै कीजै; मिटै जगत की हाँसी॥

[२८४] राग धनाश्री

भक्त न भयौ भक्त कौ पूत।
भक्त होइ साकत कें, ज्यों श्रुतिदेव सुदामा मूत॥
उग्रसेन कें कंस, बली कें बानासुर जम ऊत।
भीषम कें रुक्म, बिभीषन के घर भयौ कपूत॥
सेन, धना, रैदास भयौ जयदेव, कबीर अभूत।
बूड्यौ बंस कबीर कौ, जब भयौ कमाला पूत॥
होइ भक्त कें साकत, जानियौ अन्य काहु कौ मूत।
ब्रह्मा कें नारद, 'व्यास' कें बिदुर, सुक अवधूत॥

[२८६] राग धनाश्री

कर्मठ गुरू सकल[1] जग बाँध्यौ, करम-धरम अरुझाये।
काका, बाबा, घर-गुरु कीनें, घर ही कान फुकाये॥
जिनकैं भक्ति कहाँ तें उपजै, साधु न मन में आये।
क्रोध रारि हींसा के माँडें; सिष्य न गुरू सुहाये॥
प्रभुता रहत न तन के नातें, कोटिक ग्रन्थ सुनाये।
बड़े कुलीन, विद्या-अभिमानी, सुतौ पताल पठाये॥
जगत-प्रतिष्ठा बिष्ठा सी तजि, सरन स्याम कें आये।
'व्यासदास' कुल तजो बड़ाई, तब हरि-भक्ति कहाये॥

हरि-बिमुखनि,जननी जिन जावै। हरिकी भक्ति बिनु,कुलहिं लजावै॥
हरि-बिनु विद्या नरक वतावै। हरिनाम पढ़ै साधुन अति भावै॥
हरि बोलि,हरिबोलि,कहूँ न धावै। हरिबोले बिनु'व्यास'मुँहन दिखावै॥

[२८७] राग धनाश्री

जिहिं कुल उपज्यौ पूत कपूत।
ताकौ बंस नास ह्वै जैहै, जिन गिधयौ जमदूत॥
जो सुत पितहिं विरोधै, सोई है सबहिन कौ मूत।
याकी साखि कंस आहुक की, जिनि हठि कियौ कुसूत॥
सोई भक्त भागवत मानें, नहिं मानें सो भूत।
इहिं संगति तें पति-गति बिसरै, हूजौ पिता अऊत॥
यह पाखंड-प्रपंच छाँड़ियै, चोर चिकनियाँ धूत।
'व्यासादि'कन बतायौ, सुक-सौनक मान्यौ सूत॥

[२८८] राग सारंग

हमारे घर की भक्ति घटी।
उपजे नाती-पूत बहिर्मुख, बिगरी सबै गठी॥
सुत जो भक्त न भयौ, तौ वा पिता की गरी कटी।

[1] 'गुरु सकल' (ख, च), 'गुरू सुकल' (छ)

भक्त-विमुख भये मम गुरु सत्य सुकल हू मीच ठटी ।।
ता समजुग तें हौं कलिजुग उपज्यौं, काम, क्रोध, कपटी ।
माला-तिलक दंभ कों मेरें हरि-नाम सीस पटी ।।
कृष्न नचाये तृष्ना के, मैं कीनी आरभटी ।।
किंहि कारन हरि 'व्यास'हिं दीन्हीं, बृन्दावनहिं तटी ।।

[२८९]   राग गौरी

मरैं वे, जिन मेरे घर गनेस पुजायौ ।
जे पदार्थ संतन के काजें, ते सारे सकतन नें खायौ ।।
'व्यासदास' कन्या पेटहिं क्यों न मरी, अनन्य धर्म में दाग लगायौ ।।

[२९०]   राग सारंग

जो हौं सत्य सुकुल कौ जायौ ।
तौ मेरौ पन साँचौ करि हरि, तुम दारुन दुख पायौ ।।
मो अनन्य के मंदिर में, जिन थापि गनेस पुजायौ ।
तिनकौ बंस बेगि हरि तोरहु, गाइ गूह जिन छायौ ।।
जिन जीवत हौं हत्यौ लोभ लगि, तिंहि बेटन कौ गरौ कटायौ ।
तिंहि मेरौ अपमान कियौ, जिंहि काल हुँकारि बुलायौ ।।
जिनकौ खोज न रहौ कहौं हरि, जिंहि हरि-परस छुड़ायौ।
रास-बिलास जहाँ होते तहँ, मलियागोरिल गायौ ।।
गुरु गोबिंदहिं मारि, गारि दै, सो पापी घर नायौ ।
यहै पाप बेगि हो फलिहै, हयजुग वृथा कहायो[1] ।।
बेगम मिहरी आपु कों रुची[2], भरुवनि भात खवायौं ।
तेहि संगति उपनो यह ममता, बाह्मन बाँधि बहायौ ।।
जो मैं कह्यौ सोई हरि कीनौ, यह परचौ जग पायौ ।
'व्यास' जु बवै, लुनैगो दुख-सुख, यह मत बेद बतायौ ।।

---

१. कहायौ, कथायो, गमायो,

२. बेगम मिहरी आयु कों रुची । बेग समार हरि आयु कौ रिचि ।
बेगि महावरि आपुन कों रचि, बेगम महेरी आपुन कों रचि ।

[२९१] राग सारंग

करि मन साकत कौ मुँह कारौ।
साकत मोहिं देख्यौ भावै, कहा बूढ़ौ, कहा वारौ ।।
साकत देखें डर लागतु है, नाहर हू तें भारौ।
भक्त हेत मम प्रान हनत है, नैंकु न डरै मटचारौ ।।
आठैं - चौदस कूँड़ौ पूजैं, अभागे कौ ज्ञान अँध्यारौ।
'व्यासदास' यह संगति तजियै, भजियै, स्याम सवारौ ।।

[२९२] राग सारंग

सेइयौ,स्यामा-स्याम वृन्दावनबासी ।
रसिक अनन्य कहाय अनत रहि, विषै-व्याल बिपुलहिं सहि हासी।
साधु न बसत असाधु-संग महँ, जब - तब प्रीति - भंग दुखरासी।
देह, गेह, संपति, सुत, दारा, अधर, गंड, भग, उरज उपासी ।।
पून्न के हित सूत पियत हैं, भूत - विप्र कर कासी।
तिन सों ममता करि हरि बिसरे, जानत मंद न, तिनहिं बिसासी ।।
स्वारथ-परमारथ पथ छूट्यौ, उपजी खाज कोढ़ में खासी।
देह बूड़ बूढ़्यौ वंस 'व्यास' कौ, बिसर्यौ कुंज-निकुंज-निवासी ।।

[२९३] राग सारंग

अब सांचेहू कलिजुग आयौ।
पूत न कह्यौ पिता कौ मानत, करत आपनौ भायौ ।।
बेटी बेचत संक न मानत, दिन - दिन मोल बढ़ायौ।
याही तें बरषा मंदि होति है, पुन्य तें पाप सवायौ ।।
मथुरा खुदत, कटत वृन्दावन, मुनिजन सोच उपायौ।
इतनौ दुःख सहिबे के काजें, काहे कों 'व्यास' जिवायौ ।।

[२९४] राग सारंग

बिनु भक्तिहिं जे भक्त कहावत।
भीतर कपट निपट सब ही सौं, ऊपर उज्जल ह्वै जु दिखावत।।

धन सबही कौ मूसि ठूसि कैं, घर भरि सठ सो सुतनि खवावत।
दिन-दिन क्रोध विरोध जगत सों, सो धन बोध हियौ हरि आवत ॥
झूठी बात न अटकत, भटकत, पटकत पाग फिरादनि धावत ।
परचौ रहै पाटी तर निसि-दिन, विषयिन घर आयौ नहिं भावत ॥
कोऊ न लेतु नाउँ गाउँ में, ठाँव - ठाँव पनहीं जु ठुकावत ।
ऐसे कुल में उपजे पाँवर, 'व्यासै' घर-घर फिरत लजावत ॥

[२९५]   राग सारंग

हरि भक्तन तें समधी प्यारे ।
आये संत दूर बैठारौ, फोरत कान हमारे ॥
दुर देस तें सारे आये, ते घर में बैठारे ।
उत्तम पलिका, सौरि सुपेती, भोजन बहुत सवारे ॥
भक्तनि दीजैं चून चनन कौ, इनकों लिलवट न्यारे ।
'व्यासदास' ऐसे बिमुखनि, जम सदा वढ़ोरत हारे ॥

[२९६]   राग सारंग

ये दिन अब ही लगत सुहाये ।
जब लगि तरुनि तरीछी चितवनि, फिरत बिषै कों धाये ।
उठि-उठि चलत गोष्ठ में बैठत, जंगी भंगी भाये ।
मोतिन-माल, कनक-आभूषन, रुचि-रुचि बहुत बनाये ॥
तजि कुल-बधू औगुननि गहिं रहि, लै बिस्वन पहिराये ।
मन-मन भुसो मसकरन ऊपर, माखन दूध खवाये ॥
खाटौ मठा कठिन भक्तन कौं, भांडन खोवा खाये ।
लोक-लाज कों तन-मन अरप्यौ, हरि हित दाम न लाये ॥
परमारथ कों नहीं थेगरी; बिमुखन जरकस पाये ।
अदल - बदल ह्वै है दिन दस में, जरा जोगरिन छाये ॥
अब तौ चपल बुढ़ायौ आयौ, रोग - दोष तन ताये ।

अब हू सुमिरि चत्रभुज प्रभु कों, ह्वै है काम कहाये।
'व्यासदास' आसा चरननि की, विमल-विमल जस गाये।।

२०. साधारण पद--

[२९७] राग नट व आसावरी

मुँह पर घूँघट नैन नचावै। बातन ही की लाज जनावै।।
अपने ही मुँह सुपत कहावै। जारहिं लीन भरतार न भावै।।
बाहिर पहिर-ओढ़ि दिखरावै। भीतर विष की बेलि बढ़ावै।।
सोई सुहागिल सती कहावै। गुन-बल जो इहि भाँति रिझावै।।
अंजन मंजन कै भरतहिं नचावै। 'व्यास' जु साँचे सुख नहिं पावै।।

[२९८]

ऐसौ जो मन हरि सौं लागै।।
जैसें चकई पिया बियोगिन, निसा सबै वह जागै।।
जल ही तें उत्पत्ति कमल की, सदा रहै बैरागै।
जैसें दिनकर उदै होत ही, महामुदित रस पागै।।
जैसी प्रीत चकोर-चंद की, अनत नहीं चित तागै।
ऐसें 'व्यास' मिलहु जो हरि सों, जरा-मरन-भ भागै।।

[२९९]

झूलैं मेरे गंडकीनंदन।
मानहु भटा कढ़ी में बोरे, अंग लगायें चंदन।।
हाथ न पाँइ, नैन नहिं नासा, ध्यान करत कछु होत अनंद न।
जालंधर अरु वृन्दा बल्लभ, गावै 'व्यास' कहा कहि छंदन।।

❀ श्रीयुगलकिशोरो जयति ❀

अपने इष्ट के नाम स्वरूप धन को जमा करने का एकमात्र स्थान

श्रीराधा नाम बैंक

प्रमाण-पत्र पाँच लाख नाम जमा करने पर ही प्राप्त होता है।

भाषा का प्रतिबन्ध नहीं !

नि:शुल्क सदस्यता के लिए पत्र-व्यवहार करें—

श्रीराधा नाम बैंक

युगलकुञ्ज (काँच का मन्दिर)

ज्ञानगुदड़ी, वृन्दावन (उ० प्र०)

साखी

•

१. गुरु-स्मरण— दोहा

हरि-हीरा गुरु-जौहरी, 'व्यास' हिं दियौ बताय।
तन-मन आनंद-सुख मिलै, नाम लेत दुख जाय ॥ १ ॥
आदि, अन्त अरु मध्य में, गहि रसिकन की रीति।
संत सबै गुरुदेव हैं, 'व्यास' हिं यह परतोति ॥ २ ॥
'व्यास' भलौ अवसर मिल्यौ, यह तन गुरु मुख पाय।
फिरि पाछैं पछतायगौ; चौरासी में जाय ॥ ३ ॥

२. युगल चरण ध्यान—

'व्यासदास' से पतित सों, भृगु कौ पलटौ लेहु।
उन उर दीनौ एक पग, तुम ये दोऊ देहु ॥ ४ ॥
जुगल चरन हिय ना धरे, मिले न संतन दौरि।
'व्यासदास' तें जगत में, पपत पराई पौरि ॥ ५ ॥

३. संत-प्रशंसा—

सती, सूरमा, संतजन, इन समान नहिं और।
अगम पंथ कों पग धरैं, डिगैं न पावैं ठौर ॥ ६ ॥
'व्यास' भक्ति को बन घनौ, संत लगे फल-फूल।
पत्रनि-पत्रनि जल भिद्यौ, तरुवर साखा मूल ॥ ७ ॥
'व्यास' न कबहूं उपजिहै, बिषियन कें अनुराग।
साधु-चरन-रज-पान बिनु, मिटै न उर कौ दाग ॥ ८ ॥

साधुन की सेवा कियें, हरि पावत संतोष।
साधु-बिमुख जे हरि भजें, 'व्यास' बढ़ै दिन रोष ॥ ६ ।
हौं बलिहारी भक्त की, करचौ बहुत उपकार।
हरि सौ धन हिरदय धरचौ, छुड़ा दियौ संसार ॥ १० ॥
'व्यास' भक्त कें जाइयै, देखत गुन कौ हेत।
सूरा ह्वै तौ उठि मिलै, नातर हारै खेत ॥ ११ ॥
'व्यास' बसेरो कुञ्ज में, वंशीवट की छाँह।
हरि-भक्तन कौ आसरौ, राधा-वर की बाँह ॥ १२ ॥
'व्यास' सु रसिकन की रहनि, बहुत कठिन है बीर।
मन आनँद घटै न छिन, सहत जगत की पीर ॥ १३ ॥
'व्यास' जगत में रसिक जन, जैसें द्रुम पर चंद।
सत्त - चित्त - आनन्दमय, भेद न जानत मंद ॥ १४ ॥
रसिक कहैं सोई भली, बुरी न मानो लेस।
पद - रज लै सिर पर धरो, यह 'व्यासै' उपदेस। १५ ॥
'व्यास' कठिन कलिकाल है, नाम रूप अवगाहि।
मिलि रसिकन सों निरन्तर, नर-तन-हीरा पाहि ॥ १६ ॥
'व्यास' बड़ाई और की, मेरे मनं धिक्कार।
रसिकन की गारी भली, यह मेरौ सिंगार ॥ १७ ॥
'व्यास' रसिक वासों कहैं, काटै माया-फंद।
हरि-जन सों हिल मिल रहै, कबहू व्यापै न द्वन्द ॥ १८ ।

४. हरिजन महिमा—

व्यासदास' हरिजन बड़े, जिनकौ हृदय गँभीर।
अपनौ सुख चाहत नहीं, हरत पराई पीर ॥ १९ ॥
'व्यास' जाति तजि भक्ति कर, कहत भागवत टेरि।
जातिहिं भक्तिहिं ना बनै, ज्यों केरा ढिंग बेरि ॥ २० ॥

वृन्दावन के स्वपच कौ, रहियै सेवक होय।
तासों भेद न कीजियै, पीजै पद - रज धोय ॥ २१ ॥
'व्यास' सुपच बहु तरि गए, एक नाम लवलीन।
चढ़े नाव अभिमान की, बूड़े कोटि कुलीन ॥ २२ ॥
'व्यास' कुलीननि कोटि मिलि, पण्डित लाख पचीस।
स्वपच भक्त की पानहीं, तुलें न तिनके सीस ॥ २३ ॥
'व्यास' रसिक ज़न ते बड़े, ब्रजतजि अनत न जाँय।
वृन्दावन के स्वपच लौं, जूठन मागैं खाँय ॥ २४ ॥
'व्यास' मिठाई विप्र की, तामें लागै आग।
वृन्दावन के स्वपच की, जूठन खैयै माँग ॥ २५ ॥
'व्यास'हिं बाह्मन जिन गनौ, हरि-भक्तन कौ दास।
राधाबल्लभ कारनैं, सह्यौ जगत उपहास ॥ २६ ॥
मुहरैं-मेवा अनत के, मिथ्या भोग-बिलास।
वृन्दावन के स्वपच को, जूठनि खैयै 'व्यास' ॥ २७ ॥
'व्यास' बड़ाई छाँड़ि कै, हरि-चरनन चित जोरि।
एक भक्त रैदास पर, वारौं बाह्मन कोरि ॥ २८ ।
वृन्दावन कौ चूहरो, बेचि खात है सूप।
ताकी सरवर ना करै, आन गाँव कौ भूप ॥ २९ ।
हरि-जन आवत देखिकैं, फूलें अङ्ग न मात।
तन-मन लै आगैं मिलैं, हिलमिल हरि-गुन गात ॥ ३० ।
'व्यास' बड़े हरि के जनां, जिनके उर कछु नाहिं।
त्रिभुवन-पति जिनके सुबस, और कहौ किंहि माहिं ॥ ३१ ॥
'व्यास बड़े हरि के जना, जिन के हरि आधार।
निस - दिन ते मांते रहैं, पियैं प्रेम चित धार ॥ ३२ ॥

'व्यास बड़े हरि के जना, जिनकें हरि आधार ।
निसि-दिन हरि के भजन में, घटत न कबहू प्यार ।। ३३ ।।
'व्यास' बड़े हरि के जना, जिनकौ हरि सौ मित्त ।
निस-दिन ते माते रहैं, सदा प्रफुल्लित चित्त ।। ३४ ।।
'व्यास बड़े हरि के जना, सदा रहत भरपूर ।
खात - खवावत घटति नहिं, ज्यों समुद्र के पूर ।। ३५ ।।
'व्यास' बड़े हरि के जना, हरि कों अरप्यौ आय ।
निसि-दिन अति उल्लास मन, मुख सें हरि जस गाय ।। ३६ ।।
'व्यास' बड़े हरि के जना, हरि-जस में भे लीन ।
तन-मन मनसा हरि बिना, और कछू नहिं कीन ।। ३७ ।।
'व्यास' बड़े हरि के जना, हरिहिं नवावत माथ ।
जिनके हिय में बसत है, तीन लोक कौ नाथ ।। ३८ ।

५. दीनता-गौरव—

'व्यास' दीनता पारसै, नहिं जानत जग अंध ।
दीन भये तें मिलत हैं, दीनबंध से बंध ।। ३९ ।।
'व्यास' दीनता के सुखहिं, कह जानैं जग मंद ।
दीन भये तें मिलत हैं, दीनबन्धु सुख - कन्द ।। ४० ।।

६. दृढ़-विश्वास—

कोटि ब्रह्म ऐस्वर्जता, वैभव ताकी वार ।
'व्यासदास' की कुँवरि कों, अब को सकै निहार ।। ४१ ।।
काहू के बल भजन कौ, काहू के आचार ।
'व्यास' भरोसे कुंवरि के, सोवत पाँव पसार ।। ४२ ।।
श्रीराधा-वर ध्याय कें, और ध्याइयै कौन ।
'व्यास' हिं देत बनै नहीं, बरी-बरी प्रति लौन ।। ४३ ।।
'व्यास' हिं अब जिन जानियो, लोक-वेद कौ दास ।
राधाबल्लभ उर बसे, औरनि ते जु उदास ।। ४४ ।।

'व्यास' एक ही बात गहि, राधावल्लभ - धाम ।
और अनेक सु भक्त सों, मेरौं नाहिंन काम ॥ ४५ ॥
आन धर्म में मिल करैं, श्रीहरि - भजन समान ।
जैसें रतन अमोल कर, जानत नहीं अजान ॥ ४६ ॥
कर्म करैं भव तरन कों, उलटे पर भव माहिं ।
पैंड़े 'व्यास' अनन्य कौ, जो पै जान्यौ नाहिं ॥ ४७ ॥
वेद - पुराननि हू पढ़ै, करैं सुकर्म संजोय ।
'व्यास' सु जन्म अनन्य बिन, एकौ गति नहिं होय ॥ ४८ ॥
सब तज भजियै स्याम कों, स्रुति- सुमृति कौ सार ।
'व्यास' प्रगट भागौत में, भृगु कीन्हों निरधार ॥ ४९ ॥

८. मन की एकाग्रता—

भाव - भक्ति बिनु चौंहटौ, जहाँ भक्त तहँ दोइ ।
'व्यास' एकता तब लखै, जबै एक चित होइ ॥ ५० ॥
मन जो चरनन तर बसै, तन जो अनतहिं जाय ।
तनु चरनन मन अनत ही, ताहि न 'व्यास' पत्याय ॥ ५१ ॥
जो हरि चरननि चित रहै, तन जु कहौ किनि जाहु ।
तनु चरननि मन अनत हीं, ताहि न 'व्यास' पत्याहु ॥ ५२ ॥
'व्यास' जु मन चरनन लगै, तन के लगै न काज ।
मन-तन करि सब तजि भजै, ताहि प्रेम की लाज ॥ ५३ ॥

९. प्रेम-भाव—

प्रेम अतनु या जगत में, जानैं बिरला कोय ।
'व्यास' सतनु क्यों परसिहै, पचि हारचौ जग रोय ॥ ५४ ॥
'व्यास' भाव बिनु भक्ति नहिं, नहीं भक्ति बिनु प्रेम ।
झूठी बातन कहकहै, क्यों सु कहावै हेम ॥ ५५ ॥
मो मन अटक्यौ स्याम सों, गढचौ रूप में जाय ।
चहले परि निकसै नहीं, मनौ दूबरी गाय ॥ ५६ ॥

मोह मुख्य या जगत में, सो कहुँ पैयत नाहिं।
काम प्रेम के कहन कों, रसना उठति कुकाहिं ॥ ५७ ॥

१०. कहनी-करनी—

'व्यास' न कथनी काम की, करनी है इक सार।
भक्ति बिना पण्डित बृथा, ज्यों खर चंदन - भार ॥ ५८॥
'व्यास' विदित चतुराइयनि, उपदेस्यौ संसार।
करनी-नाउ चढ़े बिना, क्यों करि पावै पार ॥ ५९ ॥
'व्यास' विवेकी संत जन, कहनि - रहनि में एक।
कहनि कहै, करनी करै, ज्यों पाथर की रेक ॥ ६० ॥
'व्यास' वचन मीठे कहै, खरबूजा की भाँति।
ऊपर देखौ एक सौ, भीतर तीनों पाँति ॥ ६१ ॥
मुख मीठी बातैं कहै, हिरदै निपट कठोर।
'व्यास' कहौ क्यों पाइहै, नागर नन्द-किसोर ॥ ६२ ॥
बैर करै हरि - भक्त सों, मित्र करै संसार।
भक्त कहावै आप ते, मिटै न जम को द्वार ॥ ६३ ॥
'व्यास' भागव्रत जो सुनै, जाके तन - मन स्याम।
वक्ता सोई जानियै, जाके लोभ न काम ॥ ६४ ॥

११. प्रसादोत्कृष्टता—

स्वान प्रसादै छुइ गयौ, कौवा गयौ बिटारि।
दोऊ पावन 'व्यास' के, कह भागौत बिचारि ॥ ६५ ॥
करैं व्रत्त एकादसी, हरि प्रसाद तें दूर।
बाँधे जमपुर जायँगे, मुख में परिहै धूरि ॥ ६६ ॥

१२. नाम-गुण-गान—

जिनकें मुख्य गोपाल जी, पावन हरिगुन-गीत।
तिनकों जुग-जुग जानिवौ, 'व्यासदास' के मीत ॥ ६७ ॥

'व्यास' नाम सम नाम है, नाम समान न कोय।
नामी ते प्रगटचौ बिदित तद्पि गरुवौ होय ॥६८॥
'व्यास' निरंतर भजन करि, वा निष्काम, सकाम।
हाँसी साचे क्रोध करि, बटुक बीज हरि नाम ॥६९॥
'व्यास' बिभौ के मीत सब, अंत काल कोउ नाँहि।
ता तें तुम हरि कों भजौ, जम न गहैंगे बाँहि ॥७०॥

१३. भक्ति उपदेशः—

जम की मार बुरी यहै, छुटै न और उपाय।
दृढ़ करिकै हरि-भक्त ह्वै, तब हरि-भक्ति सहाय ॥७१॥
खाइ, सोइ, सुख मानिकै, हरि-चरनन चित लाँय।
'व्यास' दास तेई बड़े, वे बैकुण्ठै जाँय ॥७२॥
हरि-हीरा निर्मोल है, निर्धन गाहक 'व्यास'।
ऊंचौ फल क्यों बावनहिं, चौंप करत उपहास ॥७३॥
'व्यासदास' की भक्ति में, नीरस करै उपाव।
ज्यौं सिंहिन के चेंटुवन, दावन कहत बिलाव ॥७४॥
'व्यास' भक्ति सहगामिनी, टेरैं कहत पुकारि।
लोक-लाज तब ही गई, बैठी मूड़ उघारि ॥७५॥
देखा-देखी भक्ति कौ, 'व्यास' न होत निवाह।
कुल-कन्या की हौस कें, गनिका करत विवाह ॥७६॥
नर-देही द्वारौ खुल्यौ, हरि पावन की घात।
'व्यास' फेरि नहिं लगतु है, तरुवर टूटचौ पात ॥७७॥
श्री हरि-भक्ति न जानहीं, मांया ही सों हेत।
जीवत ह्वै हैं पातकी, मरिकै ह्वै हैं प्रेत ॥७८॥

१४. वृन्दावन-वासः—

'व्यास' भजन करिवौ करौ, भक्तनि सों करि हेत।

यहि मन सों निस्चै करी, वृन्दावन सौ खेत ।।७९।।
कनक, रतन, भूषन, बसन, मिथ्या अनत बिलास ।
बेटी हाट सिगारिकैं, बस वृन्दावन 'व्यास' ।।८०।।
वृन्दावन कौ बास करि, छोड़ जगत की आस ।
'व्यास' सुरसिकनि हिलमिलैं, ह्वै नव जनम प्रकास ।।८१।।
बृन्दावन की द्रुम-लता, रसिकनि की घर-बात ।
राधा बिहरत लाड़िली, निरखि 'व्यास' बलि जात ।।८२।।
वृन्दावन की माधुरी, रसिकन की घर - बात ।
चारु चरन अङ्कित सदा, निरखि 'व्यास' बलि जात ।।८३।।
नैन न मूदे ध्यान कों, किये न अङ्ग-नियास ।
नाँचि-गाइ रासहिं मिले, बसि वृन्दावन 'व्यास' ।।८४।।

१५. साधना:—

'व्यास' न साधन सकल सम, हरि-सेवा सम तूल ।
पत्रनि-पत्रनि जल भिदै, सींचत तरुवर मूल ।।८५।।
'व्यास' राधिका-रमन बिनु, कहूँ न पायौ सुक्ख ।
डारन-डारन में फिरयौ, पातन - पातन दुक्ख ।।८६।।
धर्म मिटयौ, अब कृपा करि, दियौ भजन रस-रीति ।
रसिक कुँवर दोउ लाड़िले, 'व्यास'हिं बाढ़ी प्रीति ।।८७।।
मेरे मन आधार प्रभु, श्री वृन्दावन चन्द ।
नित-प्रति यह सुमिरत रहों, 'व्यास'हिं मन आनंद ।।८८।।
'व्यास' जु मूरति स्याम की, नख सिख रही समाय ।
ज्यों महदी के पात में, लाली लखी न जाय ।।८९।।
'व्यास' बिकाने स्याम-घर, रसिकन कीनौ मोल ।
जरी जेवरी ह्वै रहे, काम न आवत झोल ।।९०।।

खरे-खरे सब लेत हैं, परखि पारखी सार।
खोटे 'व्यास' अनन्य के, गाहक नंदकुमार ॥९१॥
अपने-अपने मत लगे, बादि मचावत सोर।
ज्यौं-त्यौं सब कौ सेवनैं, एकै नंदकिसोर ॥९२॥
'व्यास' चंद आकास में, जल में आभा मंद।
जलज मंद यह कहत हैं, जो हम सौ यह इंद ॥९३॥
'व्यास' न व्यापक देखियै, निर्गुन परै न जान।
तब भक्तन-हित औतरे, राधाबल्लभ आन ॥९४॥
राधाबल्लभ मूल-फल, और फूल, दल, डार।
'व्यास' इनहिं तै होत हैं, अंस-कला-अवतार ॥९५॥
राधाबल्लभ स्रुति-सुमृति, सुमिरौं कहौं सु टेरि।
श्री राधा-वर 'व्यास' कें, एक गाँठि सौ फेरि ॥९६॥
राधाबल्लभ-मधुररस, जाके हिय नहिं 'व्यास'।
मानुष-देही रतन सी, भली बिगारी तास ॥९७॥
राधाबल्लभ परम धन, 'व्यास'हिं फबि गई लूट।
खरचत हूं निघटै नहीं, भरे भँडार अटूट ॥९८॥
राधाबल्लभ 'व्यास' कौ, इष्ट, मित्र, गुरु, देव।
श्री हरिबंस प्रगट कियौ, कुञ्ज-महल रस भेव ॥९९॥

१६. हरिवंश कृपाः—

उपदेस्यौ रसिकनि प्रथम, तब पाये हरिबंस।
जब हरिवंस कृपा करी, मिटे 'व्यास' के संस ॥१००॥
मोह मया के फंद बहु, 'व्यास'हिं लीनौ घेरि।
श्री हरिबंस कृपा करी, लीनौ मोकों टेरि ॥१०१॥
'व्यास' आस हरिबंस की, तिन ही के बड़ भाग।
वृन्दावन की कुञ्ज में, सदा रहत अनुराग ॥१०२॥

श्री हरिबंस-कृपा बिना, निमिष नहीं कहुं ठौर ।
'व्यासदास' की स्वामिनी, प्रगटी सब सिरमौर ।।१०३।।
स्वामिनि प्रगटी सुख भयौ, सुर पुहपन बरसाय ।
हित हरिवंस-प्रताप तें, मिले निसान वजाय ।।४।।
'व्यास' भक्ति कौ फल लह्यौ, श्री वृन्दावन धूरि ।
हित हरिवंस - प्रताप तें, पाई जीवन-मूरि ।।५।।

१७. कुसङ्ग-त्याग—

'व्यास' विवेकी भक्त सों, दृढ़ कर कीजै प्रीति ।
अविवेकी कौ संग तजि, यही भक्ति की रीति ।।६।।
'व्यास' न तासों प्रीति करि, जाहि आपनी पीर ।
पर परीक सों प्रीति करि, दुख सहि मेटै भीर ।।७।।
व्याह- वधाऐं-स्राद्ध में, पतित नृपति ग्रह दान ।
'व्यास' बिवेकी भक्त जन, तजत बिमुख कौ ध्यान ।।८।।

१८. कपट से घृणा:—

नामा के कर पय पियौ, खाई ब्रज की छाक ।
'व्यास' कपट हरि ना मिलें, नीरस अपरस पाक ।। ९।।
'व्यास' रसिक सब चलि बसे, नीरस रहे कुबंस ।
वग-ठग की संगति भई, परि हरि गये जु हंस ।।१०।।
'व्यास' भक्ति की कुवत कहि, गुरु-गोबिंदहिं मारि ।
कै या ब्रतहिं निवाहिं कै, माला तिलक उतारि ।।११।।

१९. लोक-प्रतिष्ठा:—

'व्यास' बड़ाई लोक की, कूकर की पहिचानि ।
प्रीति करै मुख चाटहिं, बैर करैं तनु-हानि ।।१२।।

२०. आशा परित्याग:—

'व्यास' आस इत जगत की, उत चाहत हिय स्याम ।
निलज अधम सकुचित नहीं, चाहत है अभिराम ।।११३।।

'व्यास' आस करि माँगिवौ, हरि हू हरिवौ होय ।
बावन ह्वै बलि कें गये, यह जानैं सब कोय ॥११४॥
महाप्रलय अब ही भई, वृन्दावन करि बास ।
परचौ रहै निस्चित मन, छोड़ि जगत की आस ॥१५॥
'व्यास' भक्त घर-घर फिरैं, हरि प्रभु की तजि सर्मं ।
पति खोवैं पर घर गयैं, (ज्यौं) पातसाह की हर्मं ॥१६॥
'व्यास' आस जौ लगि हिये, तौ जोगी गुरु दास ।
आस बिहूनौ जगत में, जोगी गुरु जग दास ॥१७॥

२१. अभिमान से दूरः—

'व्यास' अहंता-ममतु तजि, संपति प्रभु कों जानि ।
ताही कर गुर हरि भजहु, भक्तनि कों सनमानि ॥१८॥
'व्यास' जगत अभिमान सों, नख-सिख उमग्यौ जाय ।
ते नर वृष के भानु लौं, आपुहिं धूर उड़ाय ॥१९॥
'व्यास' बसै बन-खंड में करै निरंतर ध्यान ।
तिनकों हरि कैसैं मिलैं, भक्तनि सों अभिमान ॥२०॥

२२. भ्रम जालः—

'व्यास' न सुख संसार में, जो सिर छत्र फिरात ।
रैन घनौ धन देखियत, भोर नहीं ठहरात ॥२१॥
'व्यास' विझूका खेत कौ, दुक्ख न काहू देय ।
जो निसंक ह्वै जाय, सो वस्तु घनेरी लेय ॥२२॥

२३. कंचन-कामिनि-प्रभावः—

'व्यास' कनक अरु कामिनी, ये लाँबी तरवारि ।
निकसे हे हरि भजन कों, बीचहिं लीने मारि ॥२३॥
'व्यास' कनक अरु कामिनी, तजियै, भजियै दूर ।
हरि सों अन्तर पारि हैं, मुख दै जैहैं धूरि ॥१२४॥

'व्यास' पराई कामिनी, लहसनि कैसी बानि।
भीतर खाई चोरिकै, बाहिर प्रगटी आनि ॥१२५॥
'व्यास' पराई कामिनी, कारी नागिन जान।
सूँघति ही मरि जायगौ, गरुड़-मंत्र नहिं मान ॥२६॥
नारि, नागिनी, बाघिनी, ना कीजै बिस्वास।
जो वा की संगति करै, अन्त जु होय बिनास ॥२७॥
खाइ, सोइ, सुख मानहीं, कामिनि उर लपटाँय।
'व्यासदास' अचरज कहा, ते जमलोकै जाँय ॥२८॥
'व्यास' बिषय-बन बढ़ि रह्यौ, नीच-संग जल-धार।
हरि-कुठार सों प्रीति करि, कटत न लागै वार ॥२६॥

२४. कुटुम्ब-शिक्षाः—

रे भैया हो, व्यास कों, मति कोऊ पछिताय।
हरि सों हेत न छूटहै, जित बछरा तित गाय ॥३०॥
झूठ मसखरी मन लग्यौ, हरि भजिवे कों झेर।
'व्यासदास' की पौरि तैं, भक्ति गई दै टेर ॥३१॥
तजि कें रसिक अनन्यता, बिधि निषेध लै घेर।
'व्यासदास के भवन तें, भक्ति गई दै टेर ॥३२॥
रसिक अनन्य कहाइ कें, पूजें ग्रहा गनेस।
'व्यास' क्यों न तिनके सदन, जम-गन करै प्रवेश ॥३३॥
'व्यास' डगर में परि रहे, सुनि साकत कौ गाँव।
मनसा - बाचा - कर्मना, पाप महा जो जाँव ॥३४॥
'व्यास' बाघ भुज भेटियै, सहियै जिय की हानि।
साकत भक्त न भेटियै, पाछिलियै पहिचानि ॥३५॥
'व्यास' बिगूचे जे गए, साकत राँधौ 'खाँड़।
जीवत बिष्ठा स्वान कौ, मरे नरक में जाँइ ॥१३६॥

'व्यास' जहाँ प्रभु कौ भजन, होते रास विलास ।
के कामिनि-बस ह्वै गए, ऊत-पितर के दास ॥१३७॥
साकत भैया सत्रु सम, बेगहिं तजियै 'व्यास' ।
जो वाकी संगति, करै, करिहैं नरक-निवास ॥३८ ॥
साकत बामन जिन मिलौं, बैष्नव मिलि चंडाल ।
जाहि मिलै सुख पाइयै, मनौ मिले गोपाल ॥३९॥
साकत बामन मसकरा, महा पतित जग माँझ ।
पिता नपुंसक किन भयौ, माता भई न बाँझ ॥४०॥
साकत, सूकर, कूकरा, इनकी मति है एक ।
कोटि जतन परबोधियै, तऊ न छोड़ैं टेक ॥४१॥
साकत स्त्री छाँड़ियै, बेस्या करियै नारि ।
हरि-दासी जो ह्वै रहै, कुलहिं न आवै गारि ॥४२॥
पूत मूत कौ एक मग, भक्त भयौ सो पूत ।
'व्यास' बहिर्मुख जो भयौ, सो सुत मूत कुमूत ॥४३॥
नाम जपत कन्या भलीं, साकत भलौ न पूत ।
छेरी के गल गलथना, जामें दूध न मूत ॥४४॥
साकत सगौ न भेंटियै, इन्द्र - कुबेर समान ।
सुन्दर गनिका गुन भरी, परसत तनु की हानि ॥४५॥
साकत सगौ न भेटियै, 'व्यास' सु कण्ठ लगाय ।
परमारथ लै जाहिगौ, रहै पाय लपटाय ॥४६॥
'व्यास' भक्त चंदन जहाँ, सो बन सकल सुगंध ।
निकट बाँस-कुल बहिर्मुख, इनमें होइ न गंध ॥४७॥
व्यासै, बहुत कृपा करी, दीनी भक्ति अनन्य ।
कुल-कृत सब सांचौ भयौ, जहाँ भयौ उतपन्य ॥१४८॥

卐

❀ श्रीयुगलकिशोरो जयति ❀

श्रीवृन्दावन-धाम

बन है बाग सुहाग कौ, राख्यौ रस में पागि ।
रूप रंग के फूल दोऊ, प्रीत लता रहे लागि ।।

इन दोनों की अवस्था—

ऐसे रस में नित मगन, नहिं जानत निशि भोर ।
वृन्दावन में प्रेम की, नदी बहै चहुँ ओर ।।

प्रेम नदी में अवगाहन करने से इनकी दशा का वर्णन जो त्रिलोकी में केवल वृन्दावन में ही अवलोकन करने को मिलता है—

न्यारौ है सब लोक तें, वृन्दावन निज गेह ।
खेलत लाड़िली लाल जहाँ, भीजे सरस सनेह ।।

आप भी क्यों न एक बार इस प्रेम की नदी में गोता लगावें जहाँ कैलाशपति शंभु भी गोता लगाकर रस में ऐसे डूबे कि ऐश्वर्य एवं पुरुष भाव छोड़कर, पहन के लहँगा-फरिया, रास में गोपेश्वर स्वरूप से पधारे जो आज तक वृन्दावन में अवस्थित हैं ।

रास के मधुर रस का चसका, बिना व्रजवासियों की कृपा के अत्यन्त दुर्लभ है, उसी दुर्लभ रस की प्राप्ति के लिये, विशाखा सखी के अवतार श्रीहरिराम व्यासजी महाराज की दिव्य भजन-स्थली श्री किशोर-वन में—

रसिक भक्तवांछा कल्पतरु रास मण्डल एवं अतिथि गृह—
जिसका निर्माण रसिक भक्तों के सहयोग से हुआ है ।

अब आवश्यकता है—

नित्य रासलीला के लिये । रास रसिक प्रेमी महानुभावों की जो दैनिक खर्च के लिये अपनी श्रद्धा के अनुसार अखण्ड सेवा के स्थायी जमा खाते में १ दिन के लिये ३००) रुपया जमा कराने से साल में एक दिन रासलीला की सेवा हमेशा-हमेशा के लिये हो सकेगी, उत्सवों की राशि विशेष है ।

सहयोगी वृन्द सेवाधिकारी किशोर-वन से जानकारी प्राप्त करें, चैक अथवा ड्राफ्ट (किशोर कला कुन्ज) के नाम से भेजें ।

सेवाधिकारी :
गोविन्दकिशोर गोस्वामी (व्यासवंशी)
किशोर-वन, वृन्दावन ।
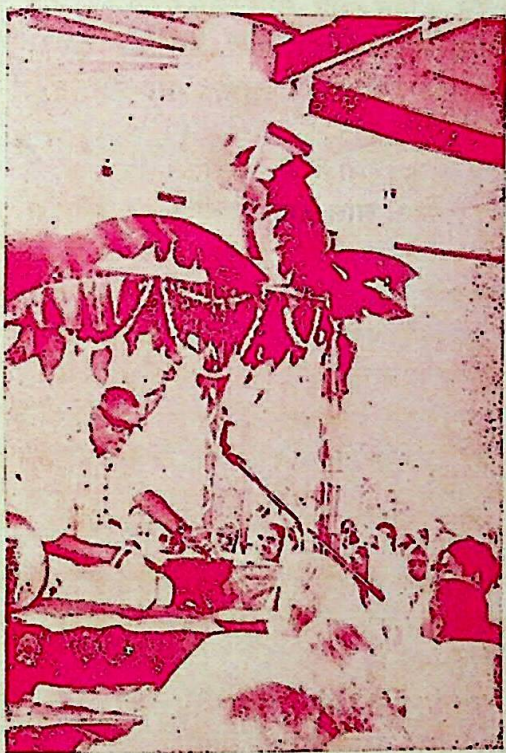
दैनिक प्रातः कालीन सत्संग के अन्तर्गत
सरस व्याख्या करते हुए

आचार्य श्रीअतुलकृष्णजी गोस्वामी

श्रीव्यास जी महाराज के ४६२-६३ वें जन्मोत्सव
के शुभ अवसर पर
भेंट कर्त्ताओं की नामावलि
१९७९

★

१२५) पारिजात ट्रस्ट — कलकत्ता
१०१) श्रीमती ललितकिशोरी देवी धर्मपत्नी स्व० श्रीराम-स्वरूप जी तम्बाकू वाले — हाथरस
१०१) श्रीकृष्ण जी पेशौरिया — अमृतसर
१०१) श्रीमगनीराम रामकुमार बाँगड़ चैरीटेबल ट्रस्ट — कलकत्ता
१०१) मधुसूदन ट्रस्ट — बम्बई
१०१) श्री मोहनलाल जी जालान पुरुलिया — बङ्गाल
१०१) श्रीगोकुलदास जी — बम्बई
५१) श्रीलाढ़िली किशोरजी गोस्वामी (व्यास वंशी) — वृन्दावन
५१) श्रीमती रानी कीर्तिकुमारी देवी — सराइकेला
२१) श्रीचन्द्रकिशोर गोस्वामी (व्यास वंशी) — वृन्दावन
१२) श्रीविक्रमसिंह परिहार — ग्वालियर
११) श्रीमती माँजी महाराज — समथर
११) श्रीमती राजकुमारीदेवी धर्मपत्नी बौहरे कन्हैयालालजी — मथुरा
११) डा० श्रीकृष्ण शर्मा — वृन्दावन
११) श्रीविष्णु जी की माता जी — वेटलागढ़
११) श्रीब्रजमोहन शर्मा तम्बाकू वाले — हाथरस
१०) श्रीमती व्रजमोहन शर्मा तम्वाकू वाले — हाथरस
११) श्रीमती शान्तीदेवी — बेलौन
११) श्रीडा० जगदीशलाल जी — दिल्ली
११) श्रीउत्तमकिशोर गोस्वामी (व्यास वंशी) — वृन्दावन

१०) श्रीगुप्तदानी महानुभाव	
६) श्रीमती हितुदासी	
५) बाबा श्रीविशाखा शरणजी	वृन्दावन
५) श्रीशम्भूचरण जी शुक्ल	"
५) श्रीमती अर्चना शर्मा	"
५) कु०रेणू गोस्वामी	"
५) श्रीमती कलावती भटनागर	"
५) श्रीमती पुष्पादेवी	टिकाथर
५) श्रीमती किशोरीदासी	"
५) श्रीबनवारीलाल जी मुखिया	"
५) श्रीसेठ हरगूलाल जी	वृन्दावन
५) बाबा श्रीहरप्रियाशरण जी	"
५) श्रीमती कुन्दन कुमारी	करतारपुर
५) श्रीमती कौशल्या देवी	
५) श्रीमती फूलवती देवी	
५) श्रीमती कौशल्या देवी	
५) श्रीमती कुन्दन कुमारी	

९६) समस्त उन भक्तों के जिन्होंने ५ से कम भेंट किये हैं।

★

श्रीकिशोर कला कुंज (किशोरवन)

द्वारा आयोजित

रंगारंग एवं झूलनोत्सव के दानदाताओं की

नामावली

१९७३-७४

९५०) सेठ सीताराम जी देवड़ा — बम्बई
५००) सेठ श्रीसाबलराम जी भालोटिया — कलकत्ता
२५०) श्रीमती सावित्री बाई बाजोरिया — "
२५०) श्रीमती विद्यावती गुप्ता — "
२५१) मैसर्स श्रीदेवकृष्णजी हिन्दूजा — बम्बई
२५१) जवीर बाई रणछोरदास लालजी नत्थु चैरीटेवल ट्रस्ट
२५१) श्रीमती चमेली देवी — पटियाला
२०१) श्रीरतनलाल जी चाण्डक
१०१) बल्लूराम वंशीधर जी मु० धरान — (नेपाल)
१०१) श्रीकृष्ण जी पेसोरिया — अमृतशहर
१०१) श्रीश्यामलाल वासुदेव — रजपुरा जिला वदायूँ
५१) श्रीकन्हैयालाल वाँगला चैरिटेविल ट्रस्ट — कलकत्ता
२५) श्रीशिवनन्दन मिश्र — नसवार जिला मधुवनी
२१) श्रीमती भगवानीदेवी — वृन्दावन
२१) महन्त श्रीउत्तमदासजी द्वारा हरनामदासजी गोविन्दधाम बम्बई
१५) श्रीपुरुषोत्तमशरण जी — विराट नगर
१२) श्रीलालमनि जी गुप्ता — उरई, जि०—जालौन

१२) श्रीमती उमारानी (बेटी) विमलावती	अमृतशहर
१२) श्रीमती शान्तीदेवी	जींद
१२) श्रीमती कस्तूरीदेवी	मैहम
१२) श्रीमती राधादेवी	दिल्ली
१२) श्रीमती प्रकाशवती	मैहम
१२) श्रीमती सरवतीदेवी ध० प० भगवानदासजी	
१२) श्रीमती कलावतीदेवी	मैहम
१२) श्रीमयी हरवाई देवी	मैहम
१२) श्रीमती मिश्रीदेवी	लाढ़ी
११) श्रीविश्वम्भरदयाल सेवामुक्त प्रधानाचार्य	देहली
११) श्रीरामलाल जी सिंघानिया	कलकत्ता
११) मैसर्स अरविन्द हौजरी	"
११) मैसर्स दी हौजरी एम्पोरियम	"
११) श्री जे० के० गुप्ता	मद्रास
११) श्रीनन्दलाल जी विरमानी	वृन्दावन
११) श्रीदीनानाथ जी कपड़े वाले	"
११) श्री हितशरण जो अग्रवाल	"
११) श्रीपन्नालाल जी सर्राफ	"
११) श्रीरामवावू शर्मा, नन्द भवन	"
११) श्रीजवेरचन्दजी	जस्दन
११) श्रीरामकिशोर जी अग्रवाल	सुनारमण्डी
११) श्रीवालाराम जी सिमन्धगा	विहार
११) श्रीरामजीलाल जी	वृन्दावन
११) श्रीरूपचन्द जी तापड़िया महेश्वरी कुज्ज	"
११) श्रीहीरालाल जी सर्राफ	"
११) श्रीमती देवकी देवी	"
१०) श्रीमती शान्तीदेवी	हाथरस
१०) श्रीमती आनन्दमयी दुवे	जवलपुर
१०) श्रीवालकृष्णदास जी	
१०) श्री गुप्तदानी महानुभाव	
७) श्रीतोताराम किशोरीलाल	वृन्दावन
५) श्रीछैलविहारी	इटावा

रासरासेश्वर श्रीयुगलकिशोरजी महाराज के रास-मण्डल एवं अतिथि गृह के निर्माण में श्रीगोविन्दकिशोर गोस्वामी को सहयोग प्रदान करने वाले भक्तों की नामावली—

१७००१) श्रीरामचंदजी दम्माणी द्वारा अपने पिताजी एवं माताजी की स्मृति में (२ कमरों की सेवा)

१०००१) स्वर्गीय गोपालदासजी धर्मपत्नी चन्द्रावली, श्रीरामजी ध० प० वृजरानी श्रीजगतनारायण ध०.प० राधाबाई पुत्र जगदीशप्रसाद कृष्णजीवन रस्तोगी लखनऊ द्वारा (सिंह द्वार एवं कमरे की सेवा)

६००१) गोलोक वासिनी श्रीमती कृष्णप्रिया बेटीजी संस्थापिका (शुद्धाद्वैत जप-यज्ञ समिति) लखनऊ द्वारा (कमरा, वरण्डा की सेवा)

६००१) लाला हरीश्याम ध० प० श्रीमती राधादेवी रस्तोगी लखनऊ द्वारा (कमरा, वरंडा की सेवा)

६००१) श्रीमती राधादेवी ध० प० सेठ सूरजमलजी राठी, कलकत्ता द्वारा (कमरे की सेवा)

६००१) श्रीमती राजोबाई ध० प० श्रीकल्याणदासजी रस्तोगी दासी श्यामप्यारी ध० प० श्रीरामआसरे लखनऊ द्वारा (कमरा, वरंडा की सेवा)

७५००) श्रीजानकीशरणजी रस्तोगी ध०प० राजरानी अशरफाबाद लखनऊ द्वारा (कमरे की सेवा)

७५००) श्रीरामनारायणजी डागा, वरसलपुर द्वारा (कमरे की सेवा)

७५००) श्रीमती मोतियारानी ध०प० बूटारामजी, देहली द्वारा (कमरे की सेवा)

७५००) श्रीपन्नालाल, जुगलकिशोर, दासी गोकुलीबाई ध० प० माधौराम रस्तोगी, दासी सरस्वतीबाई ध० प० कुञ्जबिहारी रस्तोगी दासी, गिरजाई ध० प० नारायणदास रस्तोगी, दासी रामाबाई ध० प० रामस्वरूप रस्तोगी, दासी संदोहनबाई, ध० प० सुदामाप्रसाद रस्तोगी, मंत्राणी पुतलीबाई ध० प० मुरारीलाल रस्तोगी लखनऊ द्वारा (कमरे की सेवा)

५३७३) गुप्तदानी महानुभाव द्वारा (रासमण्डल के खम्बों पर मारवल की सेवा)

५००१) दासी दुर्गाबाई ध० प० श्रीरामकिशोर रस्तोगी द्वारा (कमरे की सेवा)
५०००) श्रीराधेलाल रस्तोगी ध० प० जमुनाबाई लखनऊ द्वारा (कमरे की सेवा)
४५००) श्रीराधाकिशनजी बागड़ी, कलकत्ता द्वारा (कमरे की सेवा)
४५००) श्रीकृष्णलालजी बाथम ऐडवोकेट, लश्कर द्वारा (कमरे की सेवा)
४५००) श्रीमतीचमेलीदेवी, पटियाला द्वारा (कमरे की सेवा)
४०००) श्रीमती अमरदेई अवरौल, वृन्दावन द्वारा (कमरे की सेवा)
३४००) विन्नानि ट्रस्ट बंबईद्वारा(मीठे कूए पर मोटर पम्प टंकी की सेवा)
२३२६) श्रीमती गिन्नीबाई ध० प० सेठ श्रीजयदयालजी हैदराबाद द्वारा (रासमण्डल में छत की आंशिक सेवा)
२३००) श्रीगोपालदास गुलाटी ध० प० प्रकाशदेवी अहमदाबाद द्वारा (रासमण्डल सिंहासन एवं नल की सेवा)
१७५०) श्रीसुवर्ण ग्वाला एवं सेठ श्रीहनुमानमलजी सिमलिया द्वारा (नल की टंकी पम्प की सेवा)
१७०१) श्रीमती द्रोपदीदेवी ध० प० प्रभुदयालजी पीलीभीत द्वारा (रासमण्डल में छत्त की सेवा)
१०५६) गुप्तदानी द्वारा श्रीमती कमलाबाई भट्टर कलकत्ता द्वारा (रासमण्डल में छत्त की आंशिक सेवा)
१५००) श्रीसुदामाप्रसाद ध० प० संदोहनबाई रस्तोगी अशर्फाबाद लखनऊ द्वारा (जल सेवा हेतु पम्प की सेवा कराई)
१०००) श्रीमती चन्द्रावली ध० प० श्रीलच्छोरामजी द्वारा (राममण्डल में खम्भों की सेवा)
१०००) लाला सोहनलाल राजाराम कागजी, अशर्फाबाद लखनऊ द्वारा (वरंडा की सेवा)
१०००) मंत्राणी रामसखी ध०प० श्रीइन्दरचन्द्र रस्तोगी चौक लखनऊ द्वारा (सिंहद्वार पर मारवल की सेवा)
१०००) श्रीमती रुक्मणी ध० प० श्रीद्वारकादास रस्तोगी चौक लखनऊ द्वारा (सिंहद्वार पर मारवल की सेवा)
६५०) श्रीसीतारामजी देवड़ा, बम्बई द्वारा (बिछाने के लिए फर्श की सेवा)
५४०) श्रीप्रतापचन्द्रजी ध०प० श्रीमती इन्द्रारानीदेवी रस्तोगी लखनऊ द्वारा (द्वितीय नल कनैक्शन की सेवा)

श्रीव्यासजी महाराज के ४६२ वें जन्मोत्सव एवं रंगारंग झूलनोत्सव का आय-व्यय विवरण सन् १९७३

आय		व्यय	
४१६९)	जमा दान दाताओं	२१५९)६६	श्रीव्यास जन्मोत्सव
१३३८)	जमा भेंट श्रीव्यास जन्मोत्सव	९८३)६०	रंगा रंग उत्सव
७००)	जमा विज्ञापन से	९४१)२०	झूलनोत्सव
६२०७)		१५७)००	रामगोपाल जो रंगवालों
५६४६)४६		३९)००	पूरनचन्दजी भगत सन् १९७२ के
५६०)५४	बाकी रहे	३६६)००	नल का पाईप एवं मोटर मरम्मत
		५६४६)४६	

रासमंडल की आवश्यकतायें

रासमण्डल में रास की उत्तम व्यवस्था के लिए निम्न वस्तुओं की आवश्यकता है। दानी सज्जन जिस वस्तु का दान करना चाहें वे 'किशोर-कला कुंज' वृन्दावन के नाम से चैक/ड्राफ्ट भेजें।

१—४ पंखे (सीलिंग फैन) प्रति पंखा		४८"	४००)
२—१० रौड	४ फुट्टी	प्रति रौड	६०)
३—४ फर्श	(साइज १५'×१५')	प्रति फर्श	२२५)
४—४ चाँदनी	(साइज १५'×१५')	प्रति चाँदनी	१२०)
५—२ गलीचा	(साइज ५'×१०')	प्रति गलीचा	१५०)
६—१२ स्पौट लाइट		प्रति लाइट	२०)
७—हारमोनियम			२५०)
८—तबला			७०)

९—झूला (प्रिया-प्रियतम की झूलन लीला के लिए)

१०—५ पिचकारी—रंगारंग महोत्सव के लिए

दानदाताओं के नाम उनकी दी हुई वस्तओं पर अङ्कित किये जायेंगे।

श्रीकिशोर कला कुंज (किशोरवन)
द्वारा आयोजित
रंगारंग एवं झूलनोत्सव के दानदाताओं की
नामावली
१९७४-७५

१११) श्री गोविन्द रामजी झुनझुनवाला — चक्रधरपुर
१०१) श्री मगनीराम रामकुमार बाँगड़ चैरिटेबल ट्रस्ट — कलकत्ता
१०१) श्री मोतीलालजी खेमका — कलकत्ता
१०१) श्री मोहनलालजी भट्टर — कलकत्ता
१०१) श्री रामचन्दजी दम्भरानी — कलकत्ता
१०१) श्री दयाराम दीपचन्दजी शर्मा — तिनसुकिया आसाम
१०१) श्री जैकरनदास सुन्दाराम, द्वारा श्रीमती गोरादेवी जलपाईगुड़ी
१०१) श्रीमती रानी ध.प. जुगलकिशोर रस्तोगी — लखनऊ
१०१) श्रीमती तारादेवी, गोपीकिशन लाट की माँजी — समसी
१०१) श्रीमती राधादासी — समसी
५१) श्रीकन्हैयालाल बागला चैरिटेबल ट्रस्ट — कलकत्ता
५१) श्री दीवान चन्दजी — दिल्ली
३१) श्री गोपालराय केड़िया — बागुड़दा
३१) श्री शिवनाथ जी टीवड़ेवाला — कलकत्ता
२१) श्री ग्वालदास जी डागा — बम्बई
१२) श्रीमती हरबाइ ध. प. जै नारायणजी — मैहम
१२) श्रीमती सरवतीदेवी ध. प. भगवान दास — मैहम
११) श्री गूगनराम जी — कलकत्ता
११) श्रीमती दुर्गीबाई अग्रवाल — "

श्री व्यास जी महाराज के ४६२-६३ वें जन्मोत्सव का

आय व्यय विवरण

[आय

१३३८) श्रीव्यासजी की भेंट
७००) विज्ञापन से
२०३८)
१२१)६६ जमा दान दाताओं से
२१५९)६६

उत्सव खर्च खाते

३३७)५० घी सत्रह किलो १५० ग्राम
१२४)०५ चीनी ३५ किलो
६३)५० आटा ४०किलो
४१) वेसन
२३)०० दही
१६)५० तेल मीठा सरसों
५९)४१ साग, मसाले
२१)०० कोयला
२७)४० फल, पत्तल, कुल्ला,सकोरा
६०)५० भोग श्रीमद्भागवत एवं समाज को
७३)०० पुताई डिस्टेम्वर मन्दिर,
४७)०० फूल डोला की सवारी के लिये
२५०)०० बैंड वाले को
२५)०० कीर्तन वालों को और फूल माला
१२४)०० भेंट रासमण्डली ४ दिन
३०)०० कार्ड एवं नोटिस छपाई
१६)०० डाक खर्च
४६०)०० विशाखा छपाई ब्लोक वगैरा
३६०)८० मार्ग व्यय चन्दा विज्ञापन उघाने में
२१५९)६६

रंगा-रंग एवं झूलनोत्सव का आय-व्ययविवरण

आय

४१६६)०० जमा दान दाता से

व्यय

झूलनोत्सव

४६५) श्रीस्वामी जी की भेंट रासलीला हेतु
६१) ताँगा-रिकशा किराया
१०७)५० भोग फूल माला
१४)५० पर्चा छपाई प्रेस को
१६५)६० शरदोत्सव
१२७)६० चाँदनी बनवाई

९४१)२०

रंगा-रंग उत्सव

१६५) • श्रीरासमण्डली के स्वामीजी की भेंट
४७) फूल माला रंग गुलाल भोग
१४)६० रिक्शा भाडा मजदूरी
२५०) फर्श (आगरासे द्वारा सीतारामजी देवडा)
३६०) एम्पली फायर
१२०) माइक्रोफोन
२७) स्टैन्ड माइक्रोफोन का

९८३)६०

समस्त शुभ कामनाओं सहित

श्री व्यासजी महाराज की ४६४ वीं जयन्ती

महोत्सव परः---

श्रद्धाञ्जलि

सादर समर्पित करते हैं।

तरुनटैक्सटाइल प्राइवेट लि०

२०३/१ महात्मा गांधी रोड, कलकत्ता-७

श्री "व्यास" जी महाराज के ४६४ वें—

जन्मोत्सव पर

शुभकामनाओं सहित

श्रद्धाञ्जलि

गोविन्द राम लच्छो राम

कालवादेवी, रोड बम्बई–२

श्री व्यास जी महाराज के ४६४ वें जन्मोत्सव पर—

श्रद्धांजलि.

सादर समर्पित करते हैं।

शारदा ट्रेडिंग

१६ इण्डिया एक्सचेंज कलकत्ता

प्रिया-प्रीतम की नित्यनिकुंज रासलीला स्थली

एवं

रसिकशेखर श्रीहरिरामजी व्यास की साधना-भूमि

किशोरवन-वृन्दावन

के

दैनिक प्रातःकालीन संत्सग में अवश्य पधारें

श्रीवृन्दावन की द्रुमलता, रसिकन की घर ब्रात।
(श्री)राधा विहरत लाड़िली, निरखि 'व्यास' बलि जात॥

श्रीधाम-वृन्दावन में आकर आपने यहाँ की लता-निकुञ्जों में बैठकर यदि श्रीधाम के रसिक भक्तों से इन लता-द्रुम की देव-दुर्लभ कथा नहीं सुनी तो आप श्रीधाम में आकर भी यहाँ के माहात्म्य से वञ्चित रह जाते हैं. यहाँ की निधि रसिकों के पास है जो उनकी अपनी वस्तु है, जिसे बड़े-बड़े विद्वान् महा-मण्डलेश्वर एवं जगद्गुरु भी नहीं बता सकते, उसे सहज में ही रसिक व्रजवासी भक्त कह देते हैं। "घर की बात" घर-वाले ही बता सकते हैं, इसके लिये श्रीधामवृन्दावन में आकर रासरासेश्वर श्रीयुगलकिशोर जी की नित्य रासस्थली श्रीकिशोर-वन के "दैनिक प्रातःकालीन सत्संग" में अवश्य पधारने का कष्ट करें।

—गोविन्दकिशोर गोस्वामी
सेवाधिकारी किशोरवन

मुद्रण : रतन प्रेस, वृन्दावन